मरण का हरण

पण्डित फूलचन्द शास्त्री

मरणकाहरण

लेखक

पण्डित फूलचन्द शास्त्री

प्रकाशक

श्री श्याम स्मारक ट्रस्ट

उमराळा – ३६४ ३३०. जि. भावनगर (सौराष्ट्र) फोन : ०२८४३–२३५२०३

E-mail : shyam@fulchandshastri.com • Website : www.fulchandshastri.com

प्रथम आवृत्ति : 25 जुलाई, 2009 प्रत : 1000

मूल्य : 10/-

टाईप सेटींग : मल्टी ग्राफीक्स
तथा मुद्रक 18, खोताची वाडी, वर्धमान बिल्डींग,
3रा माला, प्रार्थना समाज, वी. पी. रोड,
मुंबई – 400 004. फोन : 2387 3222 / 2388 4222
Website : multygraphics.com

प्राप्तिस्थान :

१) श्री श्याम स्मारक ट्रस्ट
उमराळा – 364 330. जि. भावनगर (सौराष्ट्र)
फोन : 02843-235203

२) पियुषभाई एम. शाह
119/5, मस्कती महल, पाँचवा मजला, लोहार चाल,
मुंबई – 400 002. फोन : 2208 4897

४) अक्षय देसाई
23, मीरां बिल्डींग, 18, एल. डी. रूपारेल लेन, मलबार हील,
मुंबई – 400 006. फोन : 2578 5569

३) Toral P. Bhansali
308, Ottava lane, Oak Brook,
Illinoij - Chicago. USA
Phone : 001-630-4409847.

प्रकाशकीय.....

पण्डित फूलचन्दभाई शास्त्री की नवीनतम कृति 'मरण का हरण' प्रकाशित करते हुए हमें अत्यधिक प्रसन्नता हो रही है। इससे पूर्व पण्डितजी के द्वारा लिखी गई अनेक कृतियों के सम्बन्ध में देश–विदेशों से अत्यधिक सकारात्मक प्रतिसाद मिला, जिससे हमें इस कृति को प्रकाशित करने की प्रेरणा मिली।

अनादिकाल से पंच परावर्तनरूप संसार परिभ्रमण करते हुए यह जीव अनन्त दुःख उठा रहा है, आजतक इस जीव ने मुक्तिरूपी लक्ष्मी के गले में एक बार भी वरमाला नहीं पहनाई। इस कृति में इन्होंने युक्ति से मुक्ति का मार्ग समझाने प्रयास किया हैं। मरण किसी को नहीं छोडता परन्तु आत्मा अलौकिक पुरूषार्थ करके मरण को छोड सकता है, मरण का हरण कर सकता है।

इस कृति में इन्होंने मरण के विभिन्न नाम एवं लक्षण, भव एवं भाव भ्रमण का अन्त, समाधि मरण, अज्ञानता से होनेवाली लालच की पराकाष्ठा, बहुरूपी मायावी संसार, आत्महत्या एवं उसके सम्बन्ध में विभिन्न अभिमत, पुनर्जन्म, तेरे बाद तेरा क्या होगा?, वफादार कौन? अपना देह या कुत्ता?, मरते वक्त णमोकार मंत्र सुनाया तो?, जितना अस्तित्व माना उतना इन्तझाम किया, अज्ञानी का सुख आखिर दुःख, तन एवं धन में अटकना, संसार परिभ्रमण खटकना, काम के कारण नाकाम रहा, क्या माँ–बाप को रूलाकर कोई सुखी हो सकता है?, क्या लेकर आया और क्या लेकर गया?, मोक्षमार्ग प्रकाशन आदि अनेक विषयों को सरल भाषा में अनेक द्रष्टांतों सहित प्रस्तुत किया हैं।

'श्री श्याम स्मारक ट्रस्ट' पण्डितजी के कान्तिमय भविष्य की शुभकामना करता हुआ आशा करता है कि वे इसी तरह स्व–पर हित में लगे रहें।

– किशोरभाई श्यामदेव जैन

अपनी बात

'मरण का हरण' नामक यह कृति किसी भी संप्रदाय विशेष को लक्ष्य में न रखकर निष्पक्ष भाव से लिखी जानेवाली कृतियों में से एक है। इसमें आधुनिक जगत का चित्रांकन करते हुए प्रत्येक जीव को नैतिकता से अध्यात्म की ओर चलने की प्रेरणा दी गई है। यद्यपि मरण का हरण होना ही मुक्ति का वरण है तथापि निज शुद्धात्मा का अवलंबन लिये बिना मरण का हरण सम्भव नहीं होता, इसलिए इस कृति का प्रतिपाद्य विषय त्रिकाली ध्रुव शुद्धात्मा ही है।

इसमें अल्पबुद्धि जीवों को अनेक उदाहरणों के माध्यम से सुपरिचित विषयों से अपरिचित विषयों तक ले जाने का प्रयास किया है, मरण से मुक्ति का परिचय कराया है। मुझे आशा है कि यह कृति जन-जन को अपने मरण का हरण करने में अत्यंत उपयोगी सिद्ध होगी।

मेरे व्यावहारिक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में मार्गदर्शक श्री दिनेशभाई कोठारी को धन्यवाद देता हूँ। तदुपरांत जिनके माध्यम से समस्त समाज को व्यवहार मार्ग पर चलने की प्रेरणा प्राप्त होती है एवं इस कृति के प्रकाशन में जिनका अत्यंत सहयोग प्राप्त हुआ है ऐसे वात्सल्य, दया, दान, गुरूभक्ति, क्षमादि गुणों की धारक चैतन्यमूर्ति श्रीमति रूपाबेन शैलेषभाई महेता का सहृदय आभार व्यक्त करता हूँ। साथ ही अध्यात्मप्रेमी एवं तत्त्वाभ्यासी श्रीमति रमीलाबेन जीतुभाई महेता को धन्यवाद देता हूँ।

'मल्टी ग्राफीक्स'ने इस किताब के प्रकाशन में हमें सहयोग दिया हैं, साथ ही इस कृति के प्रकाशन में जिन-जिन महानुभावों का आर्थिक सहयोग प्राप्त हुआ हैं, उनका एवं प्रत्यक्ष-परोक्ष रूप में सहायक सभी आत्मार्थियों का आभारी हूँ।

– पण्डित फूलचन्द शास्त्री

मरण का हरण

अनादिकाल से आजतक जो घटना कभी घटित ही नहीं हुई और अनन्तकाल तक कभी घटित भी नहीं होगी, अज्ञानी जीव को उसी घटना के घटित होने का भय है, वह है अपना मरण।

कोई दूसरा व्यक्ति हमें मार न दें, इस भय से हमने शत्रु पक्ष का नाश करने के लिए बन्दूक की गोलियाँ बनाई और अपने आप ही न मर जाये, इस भय से हमने बिमारी का नाश करने के लिए दवाई की गोलियाँ बनाई। फिर भी यह परम सत्य है कि आयु पूर्ण होने पर कोई बचता नहीं और आयु पूर्ण हुए बिना कोई मरता नहीं।

जन्म और मरण दो बिन्दु हैं, यदि पहला बिन्दु जन्म है तो अन्तिम बिन्दु मरण है, उन दो बिन्दुओं को जोडनेवाली रेखा का नाम जीवन है। इस वजह से ही उसे जीवनरेखा भी कहते है। जीवन की रेखा कितनी लम्बी है, महत्त्व इस बात का नहीं है, बल्कि जीवन की रेखा कैसी है, महत्त्व उसका है। कितना जीवन जीये यह नहीं देखा जाता बल्कि कैसा जीवन जीये, यह देखा जाता है। नरक में ३३ सागरोपम वर्ष की आयु भोगनेवाला नारकी अत्यंत दुःखी है। दूसरी ओर हमारे समक्ष प्रत्यक्ष द्रष्टांत है **श्रीमद् राजचंद्रजी**। सिर्फ ३३ वर्ष से कुछ अधिक जीवनकाल में इस महापुरुष ने अनन्तकाल से चल रहे संसार चक्र को रोक दिया और एकावतारी हो गये।

जन्म और मरण हमारे हाथ में नहीं है। घर में जन्म लेना या अस्पताल में जन्म लेना यह हमारे हाथ में नहीं है। साथ ही घर पर मरना या रास्ते पर मरना यह भी हमारे हाथ में नहीं है। तथापि अधिकांश ऐसा होता है कि इन्सान की जीवन यात्रा का आरम्भ और अन्त अस्पताल में होता है, जन्म और मरण स्वयं के आधीन न होने पर भी जन्म और मरण को जोडनेवाला जीवन कैसे जीना, यह हमारे हाथ में है। न्याय और नीति

के मार्ग पर चलना या अन्याय और अनीति के मार्ग को चुनना, इसका निश्चय हमें करना है।

यद्यपि हमें तो सिर्फ मरण का हरण ही करना है और कुछ भी नहीं करना है। रावण ने भी सीता का हरण ही किया था और कुछ भी नहीं किया था। यद्यपि हमें जन्म और मरण दोनों का हरण करना है फिर भी मरण का हरण करने से जन्म का हरण सहज ही हो जाता है।

जन्म और मरण इन दोनों में से मरण का ही हरण सम्भव है। सिद्धांत यह है कि मरण होने के बाद जन्म नियम से होता ही है। परन्तु जन्म होने के बाद मरण हो, ऐसा नियम नहीं है। जब कोई आत्मा एक देह को छोडकर अन्य देह को धारण करता है तब पूर्व देह के त्याग को मरण कहते है। जब कोई आत्मा जन्म लेकर परमात्मा होकर लोकाग्र शिखर स्थित होता है, तब मरण का हरण होता है।

पूर्णिमा के बाद अमावस एवं अमावस के बाद पूर्णिमा होती है, सिद्धदशा भी चौदह गुणस्थानों के बाद प्रकट होनेवाली आत्मा की परिपूर्ण शुद्ध पर्याय है। मुक्तिरूपी पूर्णिमा की यह विशेषता है कि वह पूर्णिमा कभी अमावस के रूप में नहीं पलटती।

शाब्दिक द्रष्टिकोण से देखने पर निर्वाण शब्द का अर्थ इसप्रकार होता है। निः अर्थात् रहित, वान अर्थात् देह। आत्मा का देह रहित दशा को प्राप्त होना ही निर्वाण है। **निर्वाण की प्राप्ति का दूसरा नाम मरण का हरण है। मरण का हरण ही मुक्ति का वरण है।**

अनादिकाल से आत्मा ने अनन्त जन्म मरण किये फिर भी न तो वह जन्म को समझ सका, न तो वह मरण को समझ सका। यहाँ मरण का हरण करने से पहले मरण को समझना उपयुक्त है।

मरण के विभिन्न नाम एवं लक्षण

भगवती आराधना ग्रन्थ में मरणों के नाम और लक्षण इस प्रकार कहे गये है। **यथा** –

१. आवीचिमरण :– वीचि नाम तरंग का है। यहाँ आयु कर्म के उदय को वीचि कहा है क्योंकि आयु का उदय प्रति समय होता है, अतः प्रति समय आयु का एक-एक निषेक उदय में आकर खिरना या समाप्त होना आवीचिमरण कहलाता है।

२. तद्भवमरण :– भवान्तर की प्राप्तिपूर्वक वर्तमान भव का विनाश तद्भवमरण है।

३. अवधिमरण :– वर्तमान में जितनी और जैसी आयु भोग रहे हैं तथा वर्तमान पर्याय में जैसा मरण प्राप्त हुआ है, आगामी भव में उतनी, वैसी आयु एवं उसी प्रकार से मरण को प्राप्त होना अवधिमरण है।

४. आदि-अन्तमरण :– वर्तमान मरण से भावि मरण असमान होना।

५. बालमरण :– चारित्रहीन समीचीन तत्त्वश्रद्धानी का मरण बालमरण है।

६. पण्डितमरण :– चारित्रवान सम्यग्द्रष्टी का मरण पण्डितमरण है।

७. अवसन्न-मरण :– ऋद्धियों के प्रेमी, रस युक्त आहार में आसक्त, कषायों में संलग्न, आहारादि संज्ञाओ के आधीन, पापवर्धक शास्त्रों के अभ्यासी, तेरह प्रकार की क्रियाओं में आलसी, भोजन और उपकरणों से प्रतिबद्ध, निमित्तशास्त्र, मंत्र एवं औषधि से आजीविका करने वाले, गुप्तियों और समितियों में उदासीन, संवेगभाव में मन्द, गृहस्थों को

रंजायमान करने के मनवाले तथा उनकी वैयावृत्य करनेवाले, गुणों से हीन, सदोष चारित्रवाले तथा जिन्हें संयमियों के संघ से निकाल दिया गया है ऐसे पार्श्वस्थ आदि साधुओं को अवसन्न कहते है और इनके मरण को अवसन्न मरण कहते है।

८. बालपण्डित मरण :– स्थूल हिंसादि विरतिरूप देशचारित्र और सम्यक्त्व युक्त जीवों का जो मरण होता है, वह बालपण्डित मरण है।

९. सशल्य मरण :– मोक्षमार्ग में दोष लगाना, रत्नत्रय मार्ग का नाश करना, मिथ्यामार्ग का कथन करना या मोक्षमार्ग का कथन न करना, मोक्षमार्गी संघ में भेद डालना ये सब मिथ्यादर्शन शल्य हैं। चिरकाल तक पार्श्वस्थ आदि साधु के रूप में विचरण करके भी गुरू से आलोचना नहीं करना माया शल्य है तथा ''आगामी काल में यही होना चाहिए'' इस प्रकार के मानसिक उपयोग को निदान कहते हैं। इस प्रकार मिथ्या, माया और निदान शल्यों से युक्त मरण सशल्य मरण है।

१०. बलाका मरण :– जो विनय एवं वैयावृत्य आदि में आदरभाव नहीं रखता, प्रशस्त योग के धारण में आलसी है, प्रमादी है, समिति, गुप्ति आदि में अपनी शक्ति छिपाता है, धर्मचिन्तन आदि के समय निद्रा के वशीभूत जैसा रहता है तथा उपयोग न लगने से जो ध्यानादि से दूर भागता है, उसका मरण बलाका या बलाय मरण है।

११. वोसट्ट मरण :– इन्द्रिय आदि के आधीन होकर मरण होना।

१२. विप्पासण मरण :– दुर्भिक्ष में, भयंकर जंगल में, शत्रु का या राजा का या चोर आदि का भय होने पर, एकाकी सहन करने में अशक्य ऐसे तिर्यंचकृत उपसर्ग होने या ब्रह्मचर्यव्रत का विनाश आदि रूप दूषित चारित्र होने पर संसार से विरक्त और पापों से भयभीत साधु संयम दूषित हो जाने के भय से कोई निदान नहीं करता हुआ अरहंत के समीप

आलोचना कर एवं प्रायश्चित लेकर शुभलेश्यापूर्वक श्वास निरोध कर जो मरण करता है वह विप्पासण मरण है।

१३. गिद्धपृट्ठ मरण :– उपर्युक्त कारणों से और उपर्युक्त ही आत्मविशुद्धि से युक्त जो मुनि शस्त्र द्वारा प्राणत्याग करते हैं, वह गृद्धपृट्ठ मरण है। इन दोनों मरणों का निषेध भी नहीं है और आज्ञा भी नहीं है।

१४. भक्तप्रत्याख्यान मरण :– काय एवं कषाय को कृष करते हुए विधिपूर्वक संन्यास धारण कर मरण करना या होना भक्तप्रत्याख्यान मरण है।

१५. इंगिनीमरण :– इस में मुनिजन अपनी सेवा दूसरों से नहीं कराते। अपना कार्य स्वयं करते हुए आहार–जल–त्यागपूर्वक मरण होना इंगिनीमरण है।

१६. पायोपगमन मरण :– स्व–पर सेवा से रहित आहार–जल त्याग कर वन आदि एकान्त स्थान में अकेले रहकर काष्ठ सदृश शरीर का त्यागकर उतम ध्यान में लीन रहते हुए प्राण विसर्जन या मरण करना पायोपगमन मरण है।

१७. केवली मरण या पण्डित–पण्डित मरण :– चौदहवें गुणस्थान में केवली जिन का निर्वाण या मोक्ष होना केवली मरण या पण्डित–पण्डित मरण है। **इस मरण के पश्चात् जन्म न होने से अधिकांश शास्त्रों में इसे निर्वाण कहा है।**

भव एवं भाव भ्रमण का अन्त

संसार परिभ्रमण का अर्थ आत्मा का संसरण समझना चाहिए। जब आत्मा लोकाग्र शिखर बिराजमान होता है, तब वह स्थिरता को प्राप्त होता है। एकबार स्थिर दशा को प्राप्त होने के बाद आत्मा अस्थिर दशारूप

परिवर्तित नहीं होता, क्योंकि अव्याबाध सुखी आत्मा का एक स्थान से अन्य स्थान पर गमन होता ही नहीं।

लोकाग्र तक पहूँचना इतना कठिन नहीं है, परन्तु सिद्ध पद प्राप्त करके लोकाग्र पर स्थित होना अत्यंत दुष्कर है। अनादिकाल से आजतक आत्मा अनन्तबार निगोद पर्याय धारण करके अनन्तबार सिद्धशिला पर भी गया, किन्तु सिद्ध पर्याय प्राप्त करके, मरण का हरण करके एक बार भी सिद्धशिला पर नहीं गया।

एक बार मैंने अपने मित्र को पूछा कि क्या तुम कभी कारावास में गये हो? तब वह चौंक गया और बोला कि मैं कारावास में क्यों जाऊँ? तुमने मुझे ऐसा क्यों पूछा?

तब मैंने हँसते हुए उत्तर दिया कि मुझे माफ करना, मैंने तुम्हें प्रश्न पूछने में ही गलती की। मेरे पूछने का तात्पर्य यह था कि क्या तुमने कारावास की मुलाकात ली है? मेरे पूछने का भाव ऐसा नहीं था कि क्या तुम्हें कारावास भुगतनी पडी है?

कारावास में दो प्रकार के लोग होते हैं, एक तो कैदी, जो बंधन में है और दूसरे कैदियों को देखनेवाले अधिकारी, जो मुक्त है। बस उसीतरह लोक के अग्रभाग में दो तरह के आत्मा होते हैं। एक तो निगोद के जीव और दूसरे सारे जगत को जानने-देखनेवाले मोक्ष के अधिकारी मुक्तात्मा श्री सिद्ध भगवान। चूँकि सिद्धशिला पर जाना इतना महत्त्वपूर्ण नहीं है। परन्तु सिद्ध पद के साथ सिद्ध शिला बिराजमान होने में ही आत्मा की महानता है।

निगोद के दुःख को नरक गति के दुःख से अधिक भयंकर और असह्य कहा है, इसका मूल कारण जन्म-मरण है। कम से कम दस हजार वर्ष से पहले नारकी जीव का मरण होता ही नहीं, जबकि निगोद में एक श्वास में अठारह बार जन्म-मरण होता है, देह में अत्यंत तीव्र एकत्वबुद्धि

एवं ममत्वबुद्धि होने से निगोद में हर पल, ''हाय मैं मर गया ! हाय मैं मर गया !'' ऐसी अनन्त आकुलता-व्याकुलता सहित जीव अनन्त दुःख सहन करता है।

निगोद में नरक से भी तीव्र दुःख होने से अनेक शास्त्रों में चार गतियों के दुःख का वर्णन करते हुए सर्वप्रथम तिर्यंचगति के दुःख का वर्णन किया है, क्योंकि निगोद तिर्यंचगति के अंतर्गत है।

सूक्ष्मद्रष्टि से विचार करने पर मिथ्याद्रष्टि जीव को पर्याय में एकत्वबुद्धि होने से प्रतिसमय पर्याय का नाश होने पर प्रतिसमय अपना नाश होना मानता है। इसप्रकार अज्ञानी प्रतिपल भाव मरण करके अनन्त दुःख उठा रहा है। भाव का भ्रमण रुके बिना भव का भ्रमण रुक सकता नहीं। इसीलिए ज्ञानियों ने मरण का हरण करने के लिए भावमरण का हरण करने का उपदेश सर्वप्रथम दिया है।

चूँकि ज्ञानियों के भी भवभ्रमण होता है परन्तु ज्ञानियों का भवभ्रमण के संसार परिभ्रमण के अन्त के लक्ष्य से होता है जबकि अज्ञानी का भवभ्रमण संसार परिभ्रमण के लक्ष्य से होता है।

समाधि मरण

कितने ही लोग समाधि मरण की भावना तो भाते हैं, किन्तु अपने जीवन में समता रखने का एवं समाधिमय जीने का प्रयास तक नहीं करते। ऐसे लोगों का समाधि मरण होना अत्यन्त कठिन समझना चाहिए। ज्ञानियों का मूल उपदेश तो समाधिमय जीवन जीने के लिए ही होता है। जो जीव समाधिपूर्वक जीवन जीता है उसके मरण को समाधि मरण कहते है। ज्ञानियों ने भी समभाव धारण करने की ही प्रेरणा दी हैं।

श्री योगेन्द्रदेव अमृताशीति में कहते हैं –

सत्साम्यभावगिरिगह्वरमध्यमेत्य
पद्मासनादिकमदोषमिदं च बद्ध्वा ।
आत्मानमात्मनि सखे ! परमात्मरूपं
त्वं ध्याय वेत्सि ननु येन सुखं समाधेः ।।२८।।

''हे मित्र ! सच्चे साम्यभाव की गुफा के बीच में बैठकर व निर्दोष पद्मासन आदि बांधकर अपने ही एक आत्मा के भीतर अपने ही परमात्मा स्वरूपी आत्मा को तू ध्याव, जिससे तू समाधि का सुख अनुभव कर सके।''

मरण से पूर्व आत्मा में उत्पन्न होने वाले विकल्पों से मुक्त होना, इसी का नाम समाधिमय जीवन है। हमें मरण से पहले ही समाधिमय होना है। आत्मा शरीर को छोड दें, उससे पहले ही हमें शरीर का मोह छोडना हैं, एकत्व-ममत्व तोडना हैं। ऐसे द्रढ संस्कार तत्त्वाभ्यास और भेदज्ञानाभ्यास के द्वारा ही संचित हो सकते हैं। मरण तो ज्ञानी और अज्ञानी दोनों के ही होता हैं, परन्तु अज्ञानी भयभीत होकर छटपटाता हुआ देह को छोडता है और ज्ञानी मात्र ज्ञाता-द्रष्टा होने से उनका समभावपूर्वक समाधि मरण होता है।

हमें मरने से पहले ही अपने जीवन को सुरक्षित करना है। **आत्मा की सुरक्षा का साधन तत्त्वविचार है।** तत्त्वविचार के माध्यम से आत्मसाधना प्रारम्भ होती है और तत्त्वविचार से आत्मसाधना पूर्ण भी होती है। उस सुरक्षा के आधार पर ही ज्ञानी का समाधि मरण होता है।

'समाधि' शब्द में व्युत्पत्ति द्रष्टि से 'सम्' उपसर्गपूर्वक 'अधि' धातु है जो ज्ञानार्थक है। सम् अर्थात् स्थिरतापूर्वक एवं अधि अर्थात् जानना। आधि, व्याधि एवं उपाधि आदि किसी भी परिस्थिति में विषम न होते हुए समभावपूर्वक निज शुद्धात्मा को जानना ही समाधि है। वास्तव

में केवली भगवान परम समाधि में लीन है क्योंकि वे समस्त रागादि विकारी भाव से रहित हुए हैं। **केवली भगवान केवल जानते हैं इसलिए केवलज्ञानी हैं, लोकालोक को जानने पर भी रागादिरुप परिणमित नहीं होते।** भूतकाल में वे मतिज्ञान, श्रुतज्ञान एवं अवधिज्ञान के द्वारा जानते तो थे परन्तु जानने के साथ-साथ रागद्वेषरूप परिणमित भी होते थे इसलिए भूतकाल में रागादि अवस्था में केवल ज्ञानी नहीं थे।

तत्त्व के संस्कार ही जीव का सुरक्षा कवच

तत्त्व के संस्कार मरण के समय तो जीव को उपयोगी बनते ही हैं, साथ ही जब तक मरण नहीं होता, तब तक मरण के भय से भी आत्मा को बचाते हैं। तत्त्वज्ञान के सुद्रढ संस्कार जीवन की भूलभूलैया में भूलाने से बचाते है, साथ ही मरण के भय से भी जीव को भयभीत होने से बचाते हैं। इसीलिए हमें यह समजना चाहिए कि वर्तमान में द्रढ किये गए तत्त्व के संस्कार कदापि निरर्थक नहीं बनते।

एक आदमी ने बाढ़ से बचने के लिए अपनी चारों ओर दीवारें बना ली। दीवारें बनाने के बाद दस दिन तक वहाँ बाढ़ आई ही नहीं। दस दिन के बाद ग्यारहवें दिन बाढ़ आई, तब उसके चारों ओर दीवार होने के कारण वह आदमी बच गया। उस आदमी को ग्यारहवें दिन उन दीवारों ने बाढ़ से बचाया। साथ ही पहले दस दिन तक बाढ़ नहीं आने पर भी उन दीवारों ने उस आदमी को बाढ़ आने की चिन्ता से बचाया। बस, उसीतरह तत्त्वज्ञान के संस्कार आत्मा को अनुकूल और प्रतिकूल संयोगो की प्राप्ति में कषाय नहीं करने के लिए उपयोगी होते हैं, साथ ही अनुकूल एवं प्रतिकूल संयोगो की प्राप्ति की कल्पना से बचाने के लिए भी तत्त्वज्ञान का अभ्यास अत्यंत उपयोगी है।

आत्मा की नित्यता के बारे में चर्चा करते हुए ऐसा तो सभी कहते

हैं कि आत्मा अकेला आया है और अकेला ही जानेवाला है, किन्तु आत्मा मैं ही हूँ ऐसा भावभासन जबतक नहीं होता तबतक मरण का भय नहीं टल सकता। अज्ञानी जीव आत्मा और शरीर की भिन्नता की बाते ऐसे करता है जैसे किसी दूसरों की बातें करता हो। उसे ऐसा एहसास नहीं होता कि मैं ही वह आत्मा हूँ और शरीर से भिन्न त्रिकाली शुद्ध ज्ञायकभाव हूँ। वास्तव में अपना जीवन निर्मल काँच भी भाँति पारदर्शक होना चाहिए, इतना ही नहीं, **जिन्हें जीवन जीने की तृषा न हो एवं मरने की प्यास भी न हो, वही ज्ञानी है।**

जिसप्रकार बालक, युवान और वृद्ध अवस्थाओं में आत्मा एक ही है। तीनों अवस्थाओं में रहनेवाले आत्मा के तीन प्रकार नहीं है, बस इसप्रकार भूतकाल (अनादिकाल से लेकर), वर्तमानकाल और भविष्यकाल (अनन्तकाल) तक रहनेवाला आत्मा एक ही है।

अज्ञानी जीव को अनुकूल संयोगों में धर्म एवं भगवान याद नहीं आते, किन्तु उसे यह बात नहीं भूलनी चाहिए कि अनुकूल संयोगो का वियोग होने में अधिक देर नहीं लगती। अपने भौतिक स्वार्थ की सिद्धि करने के लिए धर्म एवं भगवान का सहारा लेना धर्म का सरासर अपमान है। हमें जिनेन्द्र भगवान पर द्रढ विश्वास हैं, हम ऐसी बातें तो करते हैं किन्तु वीतरागी भगवान और वीतरागी धर्म की शरण में तभी जाते है जब प्रतिकूलता आ पडे। मोक्षमार्ग के प्रकाशक वीतरागी भगवान के पास जाकर लौकिक साध्य की सिद्धि की अपेक्षा रखना सर्वथा अनुचित है।

लालच की पराकाष्ठा

जब अज्ञानी बीमार होता है तब वह भगवान को वचन देता है कि यदि मेरी बीमारी मिट जाएगी तो मैं सम्मेदशिखरजी जाउँगा और भगवान के दर्शन करूँगा। अज्ञानी को जितनी इन्तजारी सम्मेदशिखर जाकर

दर्शन करने की है, उससे कई गुनी अधिक इन्तजारी बीमारी दूर करने की है। वह भगवान के प्रति समर्पित नहीं है बल्कि उसने वीतरागी भगवान को ऐसा वचन देकर भगवान के साथ भी सौदा ही किया है।

यहाँ तक कि वह भगवान का उतना भी विनय नहीं करता जितना विनय एक साधारण डॉक्टर का करता है। क्योंकि बीमारी के वक्त डॉक्टर को अपने घर बुलाता है, तब डॉक्टर के साथ ऐसी शर्त नहीं रखता कि यदि बीमारी दूर होगी, तो पैसे दूँगा। वहाँ तो बीमारी दूर हो या न हो, तुरन्त ही पैसे दे देता है, परन्तु वही व्यक्ति भगवान के सामने शर्त रखता है कि यदि बीमारी दूर होगी तो आपके दर्शन करने के लिए आपके पास आउँगा। इससे हम समझ सकते हैं कि स्वार्थी जीव के हृदय में जिनेन्द्र भगवान के प्रति इतना विनयभाव नहीं होता जितना विनयभाव एक डॉक्टर के प्रति होता है।

वह जिसतरह अपने नौकर को काम सौंपता है और उसके बदले में उसे तनख्वाह देता है। इसीतरह वह भगवान को भी अपना काम सौंपता है और उसके बदले में भक्तिरुपी तनख्वाह देता है। यदि वह नौकर अपना काम न करे तो उसे तनख्वाह देना बन्द कर देता है, इसीतरह भगवान ने मेरा यह काम नहीं किया ऐसा समझकर भगवान की भक्ति करना भी बन्द कर देता है।

मुनिवर रामसिंह ने पाहुडदोहा में कहा है –

देहादिवलि सिउ वसइ तुहु देवलइं णिएहि ।
हासउ महु मणि अत्थि इहु सिद्धें भिक्ख भमेहि ।।१८७।।

''देहरूपी मन्दिर (देवालय) में शिव निवास करता है, किन्तु तुम मन्दिरों में उसे खोजते हो। मुजे मन–ही–मन हँसी आती है कि तुम सिद्ध भगवान से भीख मांगने के लिए भटक रहे हो।''

यदि तन और धन का लोभी जिनेन्द्र भगवान के प्रति अंतरंग भावना सहित अपना सर्वस्व समर्पित कर दें तो निश्चितरूप से भगवान को खोज लेगा। वह जितनी रुचि एवं एकाग्रता से रूपयों का बंडल गिनता है, उतनी ही एकाग्रता से यदि वह भगवान की माला गिनें तो उसे भगवान क्यों न मिलें ? रूपये गिनते वक्त यदि वह बीच में ही गलती से गिनती भूल जाए तो वह रूपयों को दूबारा गिनता है। उसीतरह भगवान के नाम की माला गिनते-गिनते यदि गलती से गिनती भूल भी जाये तो माला दूबारा गिननी चाहिए, मगर प्रश्न यह है कि ऐसी माला गिनता है कौन ?

जब मरण का समय निकट हो तब उपस्थित सभी प्रियजनों को यह कह देना चाहिए कि, ''कोई मुझे बुलाना मत, मैं अपने आत्म स्वरूप में लीन होता हूँ।'' बस इतना कहकर अपने स्वभाव में ही स्थिर हो जाना चाहिए, जिससे अनन्तकाल से चल रहे संसार परिभ्रमण का अन्त आ जाये। ''कोई मुझे बुलाना मत'' इतना कहकर अन्तिम व्यवहार करना चाहिए एवं ''मैं अपने स्वभाव में स्थिर होता हूँ'', ऐसा कहकर निश्चय की ओर चल देना चाहिए।

ज्ञानी निरन्तर समतारुपी रसका आस्वादन करते हैं, प्रचुरसंवेदनरुप स्वसंवेदन करते है। वे देह से अत्यंत विभक्त होते है और वे तो यहाँ तक कहते है कि सुमेरू पर्वत के परमाणु में होनेवाले परिणमन से हमें कोई सुख-दुःख नहीं होता वैसे ही अपने शरीर के परमाणु में होनेवाले परिणमन से भी हमें किसी भी प्रकार का सुख-दुःख नहीं होना चाहिए। अपने शरीर के परमाणु भी सुमेरू पर्वत के परमाणु के समान अत्यंत दूरवर्ती भासित होना चाहिए जिससे देह से भेदज्ञान हो सके। **मैं देहादिक परपदार्थों से सर्वथा भिन्न एवं रागादि भावों से कथंचित् भिन्न एकाकार, अभेद, अखण्ड, नित्य, पूर्ण, स्थिर, स्वाधीन, शुद्ध, बुद्ध, चैतन्य घनपिंड आत्मा हूँ।**

मरण का दुःख

किसी अन्य व्यक्ति के मरण से अधिक दुःख अपने मरण के समय होता है। क्योंकि जब किसी रिश्तेदार का मरण होता है तब कोई निश्चित रिश्तेदार का ही वियोग होता है। जैसे कि जब पिता का मरण होता है, तब सिर्फ पिता का ही वियोग होता है। इसी तरह माता के मरण से सिर्फ माता का ही वियोग होता है, पुत्र के मरण से सिर्फ पुत्र का ही वियोग होता है। किन्तु जब स्वयं का मरण होता है, तब स्वयं से अत्यंत पर ऐसे माता-पिता-पुत्र आदि सभी संयोगो का वियोग होता है।

जरा गम्भीरता से सोचिए, जब हमारी कोई साधारण चीज भी खो जाती है, तो हमें उसके वियोग में अपार दुःख होता है। जैसे- अपना मोबाईल फोन खो जाता है, तो कुछ देर के लिए बैचेन हो जाते है, कई प्रकार के विकल्प करने लगते है। किसी दूसरे व्यक्ति के फोन से खोये हुए अपने मोबाईल पर फोन करते है। जब एक मोबाईल फोन के खो जाने से इतनी व्याकुलता एवं दुःख होता है तब मरण के वक्त इस भव में मिले हुए सभी प्रकार के चेतन और जड संयोग छोडने का काल आने पर जीव की कैसी हालत होगी ? बस, ऐसी परिस्थिति में भी जब जीव निश्चल होकर निज स्वभाव में स्थिर रहता है और सहज ही देह छूट जाती है, तब उस पवित्र आत्मा का **समाधि मरण** कहलाता है।

यद्यपि सभी अज्ञानी जीवों को सबसे अधिक भय मरण का होता है। यद्यपि जीवों की रक्षा करनी चाहिए, फिर भी पुद्गल के साथ विवेकपूर्ण वर्तन किये बिना जीवों की रक्षा भी सम्भव नहीं है। क्योंकि प्रत्येक देह पुद्गल परमाणु का पिंड है। प्राणों के रक्षण का अर्थ सभी प्रकार के प्राणों का रक्षण गर्भित है। पाँच इन्द्रियाँ, तीन बल, आयु एवं श्वासोच्छवास ये सभी प्राण उसमें गर्भित है। न ही केवल शरीर, बल्कि शरीर टिकाने में ऐसे भोजनादि पदार्थो के साथ भी विवेकपूर्वक व्यवहार करना चाहिए।

आचार्य अमितगति रचित धर्मपरीक्षा में कहा है –

यतस्ततः सदा कार्यं देहिनां रक्षणं बुधैः ।।२८।।
धर्मस्य कारणं गात्रं तस्य रक्षायतोऽन्नतः ।
अन्नदानं ततो देयं जन्मिनां धर्मसंगिनाम् ।।२९।।

''चूंकि लोक में मरण के भय से और दूसरा कोई भी भय अधिक नहीं देखा जाता है; अतएव विद्वानों को सर्वदा प्राणियों के प्राणों का संरक्षण करना चाहिए। धर्म का कारण शरीर है और चूंकि उसका संरक्षण अन्न (भोजन) से ही होता है; इसलिए धर्मात्मा जनों के लिए उस अन्न का दान अवश्य करना चाहिए।''

समय

जिन्दगी की सब से अनमोल भेट यदि आप किसी को देते हो, तो वह है आप का **'समय'**। क्योंकि आप किसी को अपना 'समय' देते हो, तो आप उन्हें अपनी जिन्दगी का वोह हिस्सा देते हो, जो फिर कभी आपको वापिस नहीं मिल सकता। मनुष्य जीवन का हर पल इतना दुर्लभ समझना चाहिए कि जिसके बदले में तीन लोक का वैभव भी खर्च किया जाए तो भी जीवन के एक पल को भी बढा नहीं सकते। वह समय ही है, जिसे हम अपना कह सकते है।

मनुष्य जीवन की महिमा अपार होने पर भी अज्ञानी क्षणिक विषयभोगों में रच-पचकर मनुष्य जीवन की दुर्लभता को समझता नहीं है। श्रीमद् राजचंद्रजी ने कहा है कि **अनन्त चक्रवर्तियों की सम्पदा से भी मनुष्यभव का एक समय अधिक मूल्यवान है।**

यदि किसी अज्ञानी के पास एक करोड रूपये हो और बैंक में जमा करने पर यदि वे रूपये आठ साल में दुगुने होते हों, तो वह उन रूपयों को बैंक में जमा करता है और जब से वह रूपयों को जमा करता है, तब

से लेकर इसी इन्तजार में रहता है कि कब आठ साल पूर्ण हो और कब मुझे दो करोड रूपये मिले। जब वह आठ साल के बाद एक करोड के बदले में दो करोड पाता है, तब बहुत ही खुश होता है, वह अज्ञानी यह नहीं सोचता कि जिस मनुष्य जीवन की हर एक पल को चक्रवर्ती के वैभव से भी अधिक मूल्यवान कही है ऐसे मनुष्यभव के आठ वर्ष मैंने एक करोड की आशा की प्यास बुझाने में व्यतीत कर दिये। **अज्ञानी इन्द्रिय सुख की अभिलाषा में ही राख के लिये रत्न को जलाता है।** वह इस बात को मरणपर्यंत नहीं समझता है कि सांसारिक सांयोगिक सम्बन्ध राह में मिलनेवाले राहगीरों की भाँति क्षणिक ही हैं। जब वास्तविक अवसर आता है, तभी इस बात का पाठ मिलता है। किसी ने कहा है कि यदि आप किसी को प्रेम करते हो, तो उस पर विश्वास करो, अन्त तक विश्वास करो। अन्त में आप को एक अच्छा प्रेमी मिलेगा या एक अच्छा पाठ सीखने को मिलेगा। आजतक किसी ने प्रेमी को तो पाया नहीं बल्कि पाठ ही सीखा। आखिर सीखा हुआ पाठ भी समय के चलते भूल गये। इसी का नाम क्षणिक जगत है।

मुझे मरना नहीं है

किसी माँ का इकलौता बेटा गम्भीर रूप से बिमार हुआ। यह जानकर माँ ने प्रार्थना करते हुए कहा कि हे भगवान ! आप मुझे आप के पास बुला लो, मगर मेरे बेटे को बचा लो। जब भगवान ने यमराज को भेजा, तब यमराज के निकट आता हुआ देखकर माँ मंत्रमुग्ध हो गई और उसने बेटे की ओर इशारा करते हुए यमराज को कहा कि आप जिसे लेने के लिए आए हो, वह यह है !

इससे हमें यह समझना चाहिए कि जब मरण आता है, तभी देह में स्थापित एकत्वबुद्धि एवं ममत्वबुद्धि का एहसास होता है। ऐसी स्थिति

उस माँ की ही नहीं, बल्कि सभी देहासक्त अज्ञानी की समझनी चाहिए।

देह एक रथ है; देहरूपी रथ जिसके कारण कार्यरत है, वह आत्मा है। लोक व्यवहार में ऐसा कहते है कि शरीर को चलानेवाला आत्मा रथी है। **जब आत्मा नामक रथी अथवा सारथी देहरूपी रथ को त्याग देता है तब रथी के वियोग में देह को अरथी कहा जाता है। आत्मा की महिमा बताते हुए महाभारत में अर्जुन के सारथी श्रीकृष्ण थे अर्थात् वे अर्जुन की आत्मा थे।** अरथी को ननामी भी कहते है। ननामी की असारता बताते हुए गुजराती में कहा है।

रस्ता पर कोई एक ननामी जती हती,
ते ननामी कोई नामी नी ज जती हती।
पण ए जती हती अे रीते के जाणे;
घर नी कोई चीज नकामी जती हती ।।

वास्तविक स्थिति भी यही है कि मृतदेह के साथ नाम लेकर व्यवहार नहीं होता। चैतन्यज्योति के अभाव में देह का दहन ही होता है। जिसप्रकार कोई आदमी अपने हाथ में एक प्रकाशित रत्न लेकर अन्धेरे कमरे में जाये, तो वह कमरा भी प्रकाशित हो जाता है, फिर उस कमरे में से बाहर निकलकर किसी दूसरे अन्धेर कमरे में जाये, तो वह कमरा भी प्रकाशित हो जाता है तब पहला कमरा प्रकाशित नहीं रहता। इससे हम समझ सकते हैं कि कमरा प्रकाशित नहीं है, बल्कि रत्न ही प्रकाशित है एवं रत्न के प्रकाश से ही कमरा प्रकाशित होता है। उसीप्रकार यह आत्मा अनादिकाल से जड देह में प्रविष्ट होता है कि देह की शोभा बढ़ जाती है और आत्मा के वियोग में देह का दहन किया जाता है। आत्मा के वियोग में देह की शोभा भी विलय को प्राप्त हो जाती है।

सूतक कहे सारा जगत, जिस आत्मा के जाने से।
सुख अनुपम प्रगट होता, अनुभव में वह आने से।।

समाज में ऐसा होता है कि आत्मा के वियोग में परिवार में सूतक लग जाता है। परिवारजनों में गम छा जाता है। आध्यात्मिक दृष्टिकोण से विचार करने पर यह प्रतीत होता है कि यदि वह आत्मा प्रत्यक्ष अनुभव में आवे तो अतीन्द्रिय आनन्द प्रकट होता है। अनन्त ज्ञानियों ने अनन्त आनन्द प्रकट किया है। जगत में आत्मा से महान अन्य कुछ भी नहीं है। लोक में निज शुद्धात्मा ही सर्वोत्कृष्ट महिमावंत पदार्थ है इसलिए आत्मा को 'सत्यम् शिवम् सुन्दरम्' कहते हैं।

वह आत्मा ही तो है जो जड पंच महाभूत के पुदगलों को ग्रहण कर के जड पर नश्वर देह का निर्माण करता है। आत्मा के वियोग में वह देह पुनः पंच महाभूत में मिश्रित हो जाता है। तब ऐसा कहा जाता है कि मिट्टी में मिट्टी मिल गई। इसी बात की ओर संकेत देने के लिए ही अग्निसंस्कार की विधि में मिट्टी की मटकी फोडी जाती है। वह मटकी किसी धातु की न होकर मिट्टी की होती है। उससे यह स्पष्ट होता है कि देह भी एक प्रकार की मिट्टी ही है।

आतमरामरूपी चैतन्य हीरे से नजर हटाकर काँच के टुकडे समान हीरे को देखने में अपना उपयोग लगाना ही अज्ञानता है। हीरा भी एक प्रकार की मिट्टी ही है। सारी जिन्दगी जड हीरा देखते-देखते अज्ञानी की आँखो की ऐसी हालत हो जाती है कि चैतन्य हीरे की बात जिस शास्त्र में लिखी है ऐसे शास्त्र को पढ तक नहीं पाती। इसलिए आँखे खराब या कमजोर होने के बाद व्यापारादि से निवृत्ति लेने की बजाय शारीरिक स्वस्थ अवस्था में ही अपने को धर्ममार्ग में मोड देना ही समझदार पुरूषों का कर्तव्य है।

आत्मा और शरीर अत्यंत भिन्न होने पर भी अज्ञानी को जड पुद्गल शरीर और शरीर के संयोग ही महिमावंत लगते हैं। अज्ञानी अत्यंत दूरवर्ती संयोगो में भी अप्रयोजनवश व्यर्थ में ही अपनापन करता है और स्वयं ही दुःखी होता है।

अपनापन

किसी एक आदमी के शरीर पर मच्छर बैठा। कुछ ही देर में मच्छर ने उस आदमी को काट लिया। फिर भी उस आदमी ने मच्छर को जिन्दा ही छोड दिया। जब उपस्थित लोगों ने उससे पूछा कि मच्छर ने तुम्हें काट लिया फिर भी तुमने उसे जिन्दा ही क्यों छोड दिया। उत्तर देते हुए वह बोला कि, मैंने उस मच्छर को इसलिए नहीं मारा क्योंकि उस मच्छर में मेरा ही खून था। जिसप्रकार कोई बाप अपने बेटे में अपना खून समझकर बेटे को मारता नहीं है, बस उसीप्रकार उस मोही आदमी ने मच्छर में भी अपना खून समझकर मच्छर को नहीं मारा।

अज्ञानी को देह के साथ साथ देह के अंगोपांग में गाढ़ एकत्वबुद्धि होती है। उसे खून की एक-एक बूँद में अपनत्व होता है, यदि अपने खून की एक बूँद भी किसी दूसरे के शरीर में चली जाए तो किसी पराये को भी अपना मानने लगता है, इस भाव का नाम ही मोहभाव है, यह भाव ही जीव के जन्म-मरण का कारण है। इसलिए कहा है कि **देह का मोह छूट जाना ही मोक्षमार्ग है एवं सदा के लिए देह का छूट जाना, वह मोक्ष है।** जो देहाध्यास को तोडता है, देह का मोह छोडता है, देह के अपनत्व से परे होता है, वह वैदेही दशा को प्राप्त होता है अर्थात् मुक्ति को प्राप्त होता है।

अज्ञानी देह के हर एक अंग में अपनत्व करता है, यहाँ तक कि वह स्वयं को देहमय ही मानता है। यदि देह का वजन ८० किलोग्राम हो, तो अज्ञानी ऐसा मानता है कि मैं ८० किलोग्राम हूँ। देह की लम्बाई ५ फीट ८ ईंच हो, तो अज्ञानी ऐसा मानता है कि ५ फीट ८ ईंच हूँ। गहराई सोचने पर वह ८० किलोग्राम मांस, खून, हड्डी और विष्टा आदि का समूह ही है। अज्ञानी स्वयं को देहस्वरूप मानता है, इसका अर्थ तो यह हुआ कि वह अपने को विष्टा स्वरूप मानता है क्योंकि विष्टा भी शरीर

में समाविष्ट है। अध्यात्ममार्ग में इसे देह में तादात्म्यबुद्धि कहते है।

अज्ञानी प्राप्त तन (देह) में इतना तन्मय होता है कि देह के प्रत्येक अंग में उसकी विशेष प्रकार की अपेक्षाएँ होती है। किसी हिन्दुस्तानी को काला शरीर प्राप्त हुआ हो तो वह ऐसी इच्छाएँ करता है कि मेरा शरीर गोरा होता तो अच्छा होता। जिन्हें बचपन से ही गोरा शरीर प्राप्त हुआ हो ऐसे युरोपियन को समुद्र किनारे धुप में नग्नावस्था में देखते हैं, उन्हें गोरा शरीर प्राप्त हुआ है फिर भी वे टमाटर जैसे लाल होना चाहते हैं। उसमें भी हिन्दुस्तानी की इच्छाएँ ऐसी होती है कि चेहरे का रंग गोरा ही होना चाहिए एवं बालों का रंग काला ही होना चाहिए। परन्तु उसकी इच्छा के विपरीत चेहरे का रंग काला हो जाए और बालों का रंग गोरा हो जाए तो उसे बहुत दुःख होता है।

अज्ञानी अपने चेहरे पर लगे हुए दाग को दूर करने के लिए अनेक प्रयत्न करता है परन्तु अनादिकाल से आत्मा में लगे हुए रागद्वेषरुपी दाग को दूर करने के लिए कुछ भी प्रयत्न नहीं करता । उसे देह की स्वस्थता के लिए सुबह पाँच बजे उठकर पाँच किलोमीटर दौडना पड़े तो भी कोई हर्ज नहीं है परन्तु आत्मा की स्वच्छता हेतु जिनमन्दिर जाकर देवदर्शन एवं प्रवचन श्रवण करने के लिए सुबह आठ बजे का समय भी बहुत जल्दी लगता है और पाँच मीटर की जिनमन्दिर की दूरी भी पाँच किलोमीटर से अधिक लगती है।

यदि उसे शरीर में कैंसर हो जाए तो स्वस्थ होने के लिए लाखों करोड़ों रुपये खर्च करने के लिए तैयार हो जाता है परन्तु आत्मा में बँधे हुए कर्मो को दूर करने के लिए एक-एक रुपया खर्च करने में सौ-सौ बार विचार करता है।

एक मित्र ने मुझे पूछा कि मैं आत्मा में बँधे हुए समस्त कर्मों का नाश करना चाहता हूँ। आप मुझे बताईये कि मैं क्या करुँ ? मैंने उनकी

परीक्षा करते हुए कहा कि आप एक लाख रुपये जिनमन्दिर में दान कर दो। वह थोडी देर चौंक गया फिर अपना मुँह लटकाकर बोला मैं अपने आधे कर्मों का ही नाश करना चाहता हूँ। उसके कहने का तात्पर्य यह था कि मैं पचास हजार रुपये का ही दान देना चाहता हूँ। मैंने उसे कहा कि तेरे कर्मों का नाश कभी नहीं होगा। तेरे पास करोड़ों रुपये है फिर भी मैंने एक लाख रुपये छोडने के लिए कहा उसमें भी तुमने एक लाख के बदले पचास हजार कर दिए। याद रखना, तुझे मुक्ति पाने के लिए सारी सम्पत्ति का त्याग करना पडेगा जो सम्पत्ति तेरे पास है उसे भी और जो सम्पत्ति नहीं है उसे भी।

आत्मा और शरीर एकक्षेत्रावगाही होने पर दोनों भिन्न-भिन्न द्रव्य हैं। वे कभी-भी मिलकर एक नहीं हो सकते। यदि वे एक हो सकते है तो सिर्फ मान्यता में ही एक हो सकते हैं, वह भी अज्ञानी की ही मान्यता में।

श्री पूज्यपाद स्वामी ने समाधितंत्र में कहा है -

घने वस्त्रे यथाऽऽत्मानं न घनं मन्यते तथा ।
घने स्वदेहेऽप्यात्मानं न घनं मन्यते बुधः ।।६३।।

''जिसप्रकार गाढा वस्त्र पहन लेने पर बुद्धिमान पुरूष अपने को-अपने शरीर को गाढा अथवा पुष्ट नहीं मानता है, उसीप्रकार अपने शरीर के भी गाढा अथवा पुष्ट होने पर अन्तरात्मा अपने जीवात्मा को पुष्ट नहीं मानता है।''

जीर्णे वस्त्रे यथाऽऽत्मानं न जीर्णं मन्यते तथा ।
जीर्णे स्वदेहेऽप्यात्मानं न जीर्णं मन्यते बुधः ।।६४।।

''जिसप्रकार पहने हुए वस्त्र के जीर्ण-बोदा होनेपर बुद्धिमान पुरूष अपने को-अपने शरीर को जीर्ण नहीं मानता है, उसीप्रकार अपने शरीर के भी जीर्ण हो जाने पर अन्तरात्मा अपने जीवात्मा को जीर्ण नहीं मानता है।''

नष्टे वस्त्रे यथाऽऽत्मानं न नष्टं मन्यत तथा ।
नष्टे स्वदेहेऽप्यात्मानं न नष्टं मन्यते बुधः ।।६५।।

''जिसतरह कपडे के नष्ट हो जाने पर बुद्धिमान पुरूष अपने शरीर को नष्ट हुआ नहीं मानता है, उसीतरह अन्तरात्मा अपने शरीर को नष्ट हो जाने पर अपने जीवात्मा को नष्ट हुआ नहीं मानता है।''

रक्ते वस्त्रे यथाऽऽत्मानं न रक्तं मन्यते तथा ।
रक्ते स्वदेहेऽप्यात्मानं न रक्तं मन्यते बुधः ।।६६।।

''जिसप्रकार पहना हुआ वस्त्र लाल होने पर बुद्धिमान पुरूष अपने शरीर को लाल नहीं मानता है, उसीतरह अपने शरीर के भी लाल होने पर अन्तरात्मा अपने जीवात्मा को लाल नहीं मानता है।''

इसी भाव को योगीन्दुदेव ने भी परमात्मप्रकाश में भी व्यक्त किया है। ज्ञानियों को देह का मोह छूट गया होने से परद्रव्य का कर्ताभाव भी सहज छूट जाता है।

श्री कुन्दकुन्दाचार्य समयसार में कहते हैं -

जो अप्पणा दु मण्णदि दुक्खिदसुहिद करेमि सत्त त्ति ।
सो मूढो अण्णाणी णाणी एत्तो दु विवरीदो ।।२५३।।

''जो यह मानता है कि मैं स्वयं परजीवों को सुखी-दुःखी करता हूँ; वह मूढ़ है, अज्ञानी है और जो इससे विपरीत है; वह ज्ञानी है।''

प्रमाणपत्र

मनुष्य को अपने जीवन में अहंकार को पुष्ट करानेवाले नाना प्रकार के प्रमाणपत्र मिलते है। वह अपने जीवन के प्रारम्भ में सर्वप्रथम जन्म का प्रमाणपत्र पाता है एवं जीवन के अंत में मरण का प्रमाणपत्र। इन प्रमाणपत्रों

को पाने के लिए उसे पढ़ाई के लिए पाठशाला जाने की आवश्यकता नहीं होती हैं। परन्तु उसमें खास बात तो यह है कि वह स्वयं न तो जन्म का प्रमाणपत्र लेने जाता है और न ही मरण का प्रमाणपत्र। प्रायः ऐसा होता है कि उसका जन्म का प्रमाणपत्र लेने के लिए पिताजी जाते हैं और मरण का प्रमाणपत्र लेने के लिए बेटा जाता है। जन्म लेनेवालें को जन्म का और मरनेवालें को मरने का प्रमाणपत्र अपने हाथ में नहीं मिलता है। म्युनिसिपालिटी के पत्रक में भी पुत्र का नाम पिता लिखवाता है एवं पिता का नाम पुत्र मिटवाता है।

लोकोत्तर द्रष्टि से विचार करने पर यह प्रतीत होता है कि **जन्म और मरण के अभाव से प्राप्त होने वाले मोक्ष का प्रमाणपत्र उसे ही मिलता है जो मोक्ष प्राप्त करता है। ऐसा नहीं हो सकता कि मोक्ष प्राप्ति के लिए बेटा पुरूषार्थ करे और पिताजी को मोक्ष मिल जाये या पिताजी पुरूषार्थ करे और बेटे को मोक्ष मिल जाये।** वास्तव में मुक्ति का प्रमाणपत्र देने वाला कोई दूसरा नहीं है। मुक्ति का प्रमाणपत्र देनेवाला भी स्वयं है और लेनेवाला भी स्वयं है क्योंकि आत्मा स्वयं मुक्त स्वभावी है और किसी भी भव्य आत्मा को कोई निश्चित जाति और वेष के भेदभाव रहित अटल पुरूषार्थ के बल से पर्याय में भी मुक्ति की प्राप्ति हो सकती है। ऐसा श्रीमद् राजचंद्रजी ने आत्मसिद्धि शास्त्र में कहा है।

श्री पूज्यपादस्वामी भी समाधिशतक में कहते हैं –

जातिलिंगविकल्पेन येषां च समयाग्रहः ।
तेऽपि न प्राप्नुवन्त्येव परमं पदमात्मनः ।।८९।।

''जिनका ऐसा आग्रह है कि अमुक जातिवाला अमुक वेष धारण करे तभी मुक्ति की प्राप्ति होती है ऐसा आगम में कहा है, वे भी मुक्ति को प्राप्त नहीं हो सकते; क्योंकि जाति और लिंग दोनों ही जब देहाश्रित

है और देह ही आत्मा का संसार है, तब संसार का आग्रह रखनेवाले उससे कैसे छूट सकते हैं?''

यद्यपि स्वार्थ का ही दूसरा नाम संसार है, फिर भी कुछ लोग इस कटुसत्य का स्वीकार नहीं करते। वे कहते हैं कि स्नेहीजन के प्रति हमारा प्रेम निःस्वार्थ है। ज्ञानी कहते हैं कि प्रेम कभी निःस्वार्थ नहीं होता है। वीतराग दशा ही निःस्वार्थ है। इसलिए यदि जगत में किसी प्रियजन का वियोग हो जायें, तो भी दुःखी होने की रंचमात्र आवश्यकता नहीं है, क्योंकि यही संसार का स्वरूप है। जो संयोग प्राप्त होता है, उसका वियोग होने के लिए प्राप्त होता है। ध्यान रहे, **'पर' कदापि 'स्व' नहीं होता** एवं **'स्व' कदापि 'पर' नहीं होता।**

श्री अमितगति आचार्यकृत धर्मपरीक्षा–१८ में कहा है –

बन्धूनामिह संयोगः पन्थानामिव संगमः।
सुहृदां जायते स्नेहः प्रकाश इव विद्युताम ।।३२।।
पुत्रमित्रगृहद्रव्यधनधान्यादिसंपदाम् ।
प्राप्तिः स्वप्नोपलब्धेव न स्थैयंमवलम्बते ।।३३।।
यदर्थमज्यंते द्रव्यं कृत्वा पातकमूर्जितम् ।
शरदभ्रमिव क्षिप्रं जीवितं तत्पलायते ।।३४।।
संसारे दृश्यते देही नासौ दुःखनिधानके ।
गोचरीक्रियते यो न मृत्युना विश्वगामिना ।।३५।।

''जिसप्रकार प्रवास में कुछ थोडे–से समय के लिए पथिकों का संयोग हुआ करता है उसीप्रकार यहाँ संसार में बन्धुजनों का भी कुछ थोडे–से ही समय के लिए संयोग रहता है तत्पश्चात् उनका वियोग नियम से ही हुआ करता है। तथा जिसप्रकार बिजली का प्रकाश क्षण–भर के लिए ही होता है उसीप्रकार मित्रों का स्नेह भी क्षणिक ही है।

जिसप्रकार कभी-कभी स्वप्न में अनेक प्रकार के अभीष्ट पदार्थों की प्राप्ति देखी जाती है, परन्तु जागने पर कुछ भी नहीं रहता है; उसीप्रकार संसार में पुत्र, मित्र, गृह और धन-धान्यादि सम्पदाओं की भी प्राप्ति कुछ ही समय के लिए हुआ करती है; उनमें से कोई भी सदा स्थिर रहनेवाला नहीं है।

जिस जीवन के लिए प्राणी महान पाप को करके धन उपार्जन किया करता है वह जीवन शरद ऋतु के मेघ के समान शीघ्र ही नष्ट हो जाता है-आयु के समाप्त होने पर मरण अनिवार्य होता है।

दुःख के स्थानभूत इस संसार में यहाँ कोई प्राणी नहीं देखा जाता है जो कि समस्त लोक में विचरण करनेवाली मृत्यु का ग्रास न बनता हो- इन्द्र, धरणेन्द्र और चक्रवर्ती आदि सब ही आयु क्षीण होने पर मरण को प्राप्त हुआ ही करते हैं।''

सार यह है कि **जो आदि में नहीं है, जो अन्त में नहीं है, उसका मध्य में होना भी न होने तुल्य ही है। यही तो वजह है कि उसे स्वप्न कहा गया है।**

बहुरूपी मायावी संसार

कितने ही बरसों से पीडित अपने माता-पिता के बारे में बेटा यह भावना भाता है कि अब मेरे से इनका दुःख नहीं देखा जाता। बस अब तो ये छूट जाये तो अच्छा होगा। यद्यपि कहने में तो ऐसा ही आता है कि माँ-बाप छूट जाये तो अच्छा होगा, परन्तु हृदय में ऐसी प्रतीति होती है कि वे कब यहाँ से जाये और मैं कब इस उत्तरदायित्व से छूटुँ?

बेटा खुद माँ-बाप से छूटना चाहता है पर कहता तो ऐसा है कि मैं उनके दुःख से मुक्ति के लिए यह कह रहा हूँ कि वे छूट जाये तो अच्छा! वास्तव में वह बेटा माँ-बाप को दुःख से छूडाना चाहता तो यह भावना

भाता कि माँ-बाप मोक्ष प्राप्त करे तो अच्छा होगा। वह तो सिर्फ इतना ही चाहता है कि माँ-बाप यहाँ से छूटे तो अच्छा !! इसका मूल कारण बेटे का अज्ञानभाव है। बेटा यह मानता है कि इस भव के बाद दुःख है ही नहीं। सिर्फ बेटा ही नहीं, बाप भी ऐसा ही मानता है कि बस, इस भव के बाद दुःख नहीं है।

बिमार बाप को जब ऐसा कहते हैं कि आप की पीड़ा हम से देखी नहीं जाती, तो वे कहते है कि, ''तुम मेरी चिन्ता मत करो, बस अब एक-दो महिने की ही बात है।'' उनके कहने का आशय यह नहीं है कि एक-दो महिने में उन्हें मोक्ष होगा और वे इस दुःख से मुक्त होकर अतीन्द्रिय सुखी होंगे। सत्य तो यह है कि वे मानते हैं कि इस भव तक ही दुःख है। किन्तु सत्य यह है कि जब तक यह आत्मा मोहभाव को नहीं छोडता तब तक संसार परिभ्रमण करता है, अनन्त दुःखी होता है। देह का मोह ही आत्मा को दूसरा देह धारण करने के लिए मज़बूर करता है।

तेरे बाद तेरा क्या होगा ?

जब तु मरेगा तब तेरा क्या होगा, क्या यह तुझे मालूम है ? जिन्हें तु अपना समझता है, वे तेरे मरने के बाद तु जिसे अपना साथी मानता है उस देह के साथ क्या करेंगे, क्या तुने कभी उसके बारे में सोचा है ?

जब तु मरेगा तब तेरे को आडा करके घर से बाहर निकालेंगे क्योंकि तु सीधी तरह घर से बाहर नहीं निकला। घरवालों ने बहुत इन्तझार किया कि तु सीधी तरह से घर छोडकर निकल जा, तो उसमें ही तेरी भलाई है। मगर तु सीधी तरह घर से बाहर नहीं निकला इसलिए तेरे मरने के बाद घर से निकालते वक्त तुझे रस्सी से कसकर बाँधेंगे और फिर घर से बाहर निकालेंगे। वे जानते हैं कि वैसे तो तु हर रोज घर से निकलता था पर बिना बाँधे निकलता था और वापिस लौटकर घर में आ जाता था।

अब तो वे तुझे बाँधकर घर से निकालेंगे जिससे कभी इस घर में वापिस न आ सके।

इतना ही नहीं, घर से निकालकर स्मशान तक ले जायेंगे। वहाँ स्मशान में ले जाकर तुझे ऐसे ही नहीं छोड आयेंगे बल्कि तुझे जला भी देंगे और जब तक पूरा नहीं जल जायेगा तब तक तेरे सभी चाहक रिश्तेदार तेरा पूरा जल जाने का इन्तझार करेंगे। जब पूरा जल जायेगा तब तेरी राख और अस्थियों को एक घडे में भरकर गंगा नदी में डालने जायेंगे। इस दौरान वे इस बात का पूरा ख्याल रखेंगे कि तेरी राख का एक कण भी उडकर यहाँ इस घर में वापिस न आ सके। अब तु ही बता कि यह शरीर तेरा है या ये रिश्तेदार तेरे हैं? उत्तर तेरे पास ही है इसलिए हे समझ के स्वामी आत्मा अभी से सोच ले कि तेरे बाद तेरा क्या होगा ?

अब स्मशान में भी वैराग्य नहीं

पहले के जमाने में यदि किसी मोहल्ले में एक गाय भी मर जाती थी तो लोग गाय की लाश उठने से पहले पानी तक नहीं पीते थे। किन्तु आज ऐसे दिन आ गये कि लोग स्मशान में भी चाय पीते हैं, नाश्ता आदि करते हैं। कहीं कहीं तो जिनके घर मरण होता है, उनके वहाँ लोग खास मिठाई खाने जाते है। क्या इसका नाम मानवधर्म है? मुझे आश्चर्य तो तब हुआ जब कुछ दिन पहले ही अपने मित्र ने मुझे बताया कि अधिकांश लोगो का उधार चूकाने का काम भी स्मशान में ही निपट जाता है, क्योंकि उधार चूकानेवाला कहीं नहीं मिलें, तो स्मशान में तो अवश्य मिल जाता है। शेअरबाझार का सेन्सेक्ष एवं हिराबजार की तेजी-मंदी के अलावा क्या बातें होती है स्मशान में? आजकल स्मशान में जाना एक औपचारिकता ही रह गई है। स्मशान भी इलेक्ट्रीक हो गये। बस, जल्दी जलाओ और जल्दी भागो ! पहले स्मशान तो वैराग्य उत्पन्न होने का स्थान था इसलिए

'स्मशान वैराग्य' मुहावरा भी चल पडा। परन्तु दुःख की बात यह है कि अब स्मशान में भी वैराग्य नहीं रहा।

लोग किसी की प्रार्थना सभा में जाते है तो वहाँ भी प्रार्थना सभा खत्म होनी होती है, उसके कुछ समय पहले ही औपचारिकता निभाने के लिए जाते है जिससे वहाँ अधिक समय के लिए बैठना न पडे, परन्तु वे यह नहीं सोचते कि बुढापे में मेरे खत्म होने के बाद यदि डॉक्टर उपचार करने के लिए आयेंगे तो क्या मुझे स्वीकार है?

इसलिए तत्वविचार करके अपने को इसप्रकार सुरक्षित कर लेना चाहिए कि डॉक्टर उपचार करने के लिए न भी आवे तो भी निर्मोही होकर देहत्याग कर सके।

वफादार कौन ? अपना देह या कुत्ता ?

लोक में ऐसा कहा जाता है कि यदि आप किसी कुत्ते को एक समय की रोटी डाल देंगे तो वह कुत्ता जिन्दगीभर के लिए अपना हो जाता है। परन्तु जरा गम्भीरता से सोचिए कि आपने इस देह को बचपन से लेकर आजतक दिन में तीन-तीन बार रोटियाँ खिलाई फिर भी बुढापे में यह देह बीमार होता है, अपने साथ वफादार नहीं होता। उससे स्पष्ट होता है कि यह देह एक कुत्ते जितना वफादार नहीं है। फिर अज्ञानी इस बात को क्यों नहीं समझता है ?

अज्ञानी को बुढापा अच्छा नहीं लगता है फिर भी बुढापा अच्छा लगता है, इस कथन में रहस्य है। अज्ञानी की भावना ऐसी होती है कि मुझे बुढापे का दुःख सहन नहीं करना है, इसलिए मुझे बुढापा नहीं चाहिए। साथ साथ मुझे जवानी में ही नहीं मर जाना, बुढापे तक जिन्दा रहना है, इसलिए उसे बुढापा अच्छा भी लगता है। अज्ञानी देह में आसक्त होने से देह में रहकर देह से सुखी होना चाहता है।

यदि मरते वक्त णमोकार मंत्र सुनाया तो ?

मरण के वक्त णमोकार सुनाना चाहिए जिससे मरनेवाला एवं मरनेवालें के परिवारवाजनों में भी शान्ति बनी रहे। कषायभावों का पोषण करनेवाली बाह्य संसार की बातें करने से णमोकार मंत्र का श्रवण जीव के परिणामों की निर्मलता बढाने के लिए उत्तम साधना है। सारी जीन्दगी सांसारिक बातों में व्यतीत कर देनेवालों के लिए मरते वक्त णमोकार मंत्र के समान और कोई भी उत्तम औषधि नहीं है।

हाँ याद रहें, यदि मरण के समीप व्यक्ति णमोकार मंत्र सुनने पर विरोध प्रकट करे तो उसे जबरदस्ती णमोकार मंत्र सुनाना अनुपयोगी सिद्ध होता है। इसलिए परिस्थिति के अनुसार विचारपूर्वक प्रवर्तना चाहिए।

शास्त्रों भी ऐसी अनेक कथाएँ आती है। कुत्ते को मरते वक्त णमोकार मंत्र सुनाने पर कुत्ते की देवगति हुई। परन्तु इसे सिद्धान्त नहीं समझना चाहिए कि मरण सन्मुख जीव को णमोकार मंत्र सुनाने से उसकी देवगति ही होगी। खास बात यह है कि किसी ने णमोकार मंत्र सुनाया, परन्तु क्या कुत्ते का उपयोग णमोकार मंत्र में लगा हुआ था ? और यदि कुत्ते का उपयोग णमोकार मंत्र सुनने में लगा भी हो तो भी उसका आयु कर्म णमोकार मंत्र सुनने से पहले ही बंध गया हो तो आयुकर्म में संक्रमण नहीं हो सकता। तथापि **राजमार्ग तो यही है कि मरते वक्त णमोकार मंत्र सुनाना चाहिए।** न ही सिर्फ मरते वक्त बल्कि हर पल णमोकार मंत्र का रटण करना चाहिए जिससे निज स्वभाव में स्थिर होने का मार्ग सरल हो।

मृतदेह का अग्निदाह अंतर्मुहूर्त में

किसी व्यक्ति का मरण होने के पश्चात् उसके मृतदेह का अग्निदाह अंतर्मुहूर्त काल में ही होना चाहिए। यद्यपि सभी देह (जीवीत एवं मृत

दोनों) पुद्गलमय होने से क्षणीक ही है, तथापि मृत्यु होने के पश्चात् जल्द से जल्द देह दहन कार्य हो जाना चाहिए। चूँकि देह की दहन क्रिया में अनन्त जीव तो मरते हैं परन्तु मृतदेह का दहन न करने पर दहन करने से भी अनन्तगुने जीव मरते हैं।

पानी उबालने पर जलकायिक जीव मरते तो है परन्तु भविष्य में उत्पन्न होनेवाले अनन्त जीव मरते हुए बचते भी है, इसीप्रकार मृतदेह का दहन करने के बारे में समझना चाहिए। मृतदेह को दफ़नाने से मृतदेह की दहन क्रिया बेहतर समझनी चाहिए।

मरण से पूर्व हमें व्यवहार हेतु परिवाजनों को इसके बारे में ज्ञात कर देना चाहिए कि मरने के पश्चात् इस देह को अंतर्मुहूर्त में जला दिया जाये। यदि अंतर्मुहूर्त में न हो सके तो जितनी हो सके उतनी जल्द से जल्द मृतदेह का अग्निदाह कर देना चाहिए।

एक माँ ने अपने इकलौते बेटे को कहा कि मेरे मरने के बाद अंतर्मुहूर्त में इस देह को जला देना। फिर माँ ने दूसरे दिन भी बेटे को यही बात कही। इसप्रकार हर बार एक ही बात दोहराने पर बेटा गुस्से में आकर बोला माँ, पहले तु मर तो सही, बिना मरे तुझे अंतर्मुहूर्त काल में जलाऊँ कैसे ? मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि व्यवहार निभाते हुए एकबार कहना ठीक है, पर बार-बार एक ही बात को पकडकर बोलते रहना भी उचित नही है।

वहाँ भी यदि किसी माँ के तीन बेटे हो, तो तीनों बेटों के सामने इस बात का स्पष्टीकरण हो जाना चाहिए, जिससे माँ के मरण के वक्त यदि कोई बेटा शहर से दूर हो और जल्द से जल्द न भी पहुँच सके और किसी दूसरे भाई ने माँ का अग्नि संस्कार कर भी दिया हो, तो भविष्य में विवाद का एवं दुःख का कारण न हो।

आत्महत्या

पराधीन व्यक्ति जब अपने दुःख को सहन नहीं कर पाता, तब वह आत्महत्या करने के बारे में सोचता है। हत्या का उद्‌भव सोच से ही प्रारंभ होता है, चाहे वह अन्य जीवों की हो या अपनी स्वयं की। पराधीन व्यक्ति अपने को पशु समान मानता है परन्तु वह पशु से थोडा-सा बोध भी नहीं लेता है। यद्यपि मनुष्य की तुलना में पशु अधिक दुःखी पाये जाते है, फिर भी आजतक ऐसा देखा या सुना नहीं गया कि किसी पशु ने आत्महत्या की हो एवं आने वाले कल की चिंता करके वस्तुओं का संग्रह किया हो।

अपरंपार समज का स्वामी मनुष्य नकारात्मक द्रष्टिकोण से विचार करता है। वह सोचता है कि मरकर जलने से बेहतर जलकर मरना है। जब पशुओं का वध किया जाता है, तब उनका जीवन (प्राण) लेकर उन्हें दुःखी करते है। किन्तु जब पशुओं को बन्धन में बांध दिया जाता है, तब उन्हें जीवन देकर दुःखी करते है। वह अपनेको भी पशु के समान दुःखी महसूस करता है इसलिए उसे आत्महत्या करने का अत्यंत अशुभ विचार आता है। वह सुख पाने की अपेक्षा वर्तमान दुःख से छूटना चाहता है।

खुदकुशी से खुशी नहीं

खुश व्यक्ति को आत्महत्या करने का भाव आता नहीं, दुःखी व्यक्ति ही दुःख से छूटकारा पाने के लिए आत्महत्या करने के बारे में सोचता है। वह ऐसा नहीं सोचता कि आत्महत्या से वर्तमान जीवित जीवन का अन्त तो होता है किन्तु दुःख का अन्त नहीं आता। जो दुःख यहाँ नहीं भोगा, वह दुःख आत्महत्या के बाद भी उसे आगामी गतियों में नियम से भुगतना ही पडता है।

पुनर्जन्म

जब किसी व्यक्ति का मरण होता है तब हम यह नहीं सोचते हैं कि यहाँ से मरकर उसने कहीं अन्य स्थान पर जन्म लिया है, साथ ही जब किसी बच्चे का जन्म होता है तब हम यह नहीं सोचते कि यहाँ जन्म लेने से पहले वह कहीं से मरकर यहाँ आया है। यह संसार इतना स्वार्थी है कि जन्म लेनेवाले के भूतकाल और मरने वाले के भविष्य काल के बारे में विचार करके वह अपने वर्तमानकाल को गँवाना नहीं चाहता। एक देह को त्यागकर अन्य देह को धारण कर लेने से मुक्ति नहीं मिल जाती। जिसप्रकार कोई व्यक्ति चार दीवारों के बीच बंधन फँसा हो, तब कितने ही काल के बाद उसे ऐसा भ्रम होता है कि अब मैं मुक्त हो गया। किन्तु वास्तव में वह मुक्त नहीं हुआ होता। सिर्फ एक दीवार से दूसरी दीवार की ओर देखने से उसे ऐसा लगता है कि मैं मुक्त हो गया। जब उसे ज्ञात होता है कि मैं बन्धन में ही हूँ, सिर्फ दीवार की दिशा ही बदली है, तब वह पुनः स्वयं को दुःखी अनुभव करने लगता है।

आजतक इस आत्मा ने अनन्त देह धारण करके छोड दी, अनन्त जन्म-मरण किये। जब आप टेलिविजन में डिस्कवरी चैनल या एनीमल प्लेनेट चैनल देखते हो, तब वहाँ दिखाये जानेवाले पशुओं के संबंध में ऐसी शंका मत करना कि ऐसे पशु भी होते होंगे? बल्कि ऐसा सोचना कि मैं अनन्तबार ऐसे भव धारण कर चुका हूँ। बड़ी कठिनाइ से वहाँ पर्याय से निकलकर अमूल्य मनुष्यभव मिला है। आजतक मैं सब कुछ बन चुका हूँ, पर भगवान नहीं बना हूँ। उसका प्रमाण यह है कि अभी तक यहाँ संसार में ही भटक रहा हूँ। यदि मैं भगवान बन चुका होता तो आज यहाँ इस हालत में नहीं होता !!

कहाँ से कहाँ ?

पिता ब्रीचकेन्डी हॉस्पिटल में बीमार अवस्था में दुःखी है, बेटे ने पिता की सेवा करने के लिए चार-चार नर्स रखी है। बेटा लाखों-करोडों रुपये खर्च करके भी अपने पिता को बचाना चाहता है। दुनिया के श्रेष्ठ डॉक्टर पिता को बचाने का प्रयत्न करते है। परन्तु जब आयु पूर्ण होती है, तब पिता का आत्मा एक पल में धारावी की झोंपडपट्टी में जन्म लेता है, वहाँ उसका बाप शराबी है, कबाबी है, व्यसनी है। देखो संसार का क्षणिकपना !! एक पल में कहाँ से कहाँ ? यहाँ तो धारावी की झोंपडपट्टी का द्रष्टांत लिया है, किन्तु हमें ऐसा समजना चाहिये कि यह आत्मा एक पल में नरक एवं निगोद में जा सकता है, तब फिर वर्तमान में प्राप्त अनुकूल साधनों का सदुपयोग कर लेना ही श्रेयस्कर है।

क्या आत्मघाती नरक में ही जाता है ?

तीव्र कषाय के बिना आत्मघात का भाव नहीं आता। अपने आत्मा के प्रति अनन्त क्रोध के कारण ही जीव आत्मघात करता है। चारों गतियों में से नरकगति में क्रोध सर्वाधिक पाया जाता है, इसलिए ऐसा कहा जाता है कि आत्मघाती नरकगति में ही जाता है।

उदय की अपेक्षा से नरकगति को ही अशुभगति और देवगति, मनुष्यगति और तिर्यंचगति इन तीन गतियों को शुभगति कहते है। नारकी जीव प्राप्त देह से स्वयं को दुःखी मानकर हर पल मरना चाहते हैं, वे नरकगति में जीना नहीं चाहते हैं, जबकि देवगति, मनुष्यगति और तिर्यंचगति के जीव प्राप्त देह से स्वयं को सुखी मानकर हर पल जीना चाहते हैं, इसलिए ऐसा कहा जाता है कि आत्महत्या करनेवाला जीव नरकगति को प्राप्त करता है।

कर्मसिद्धांत द्रष्टि से ऐसा नियम नहीं है कि आत्मघाती नरकगति

में जन्म लेता हो। आत्महत्या करने का भाव उत्पन्न होने से पहले ही यदि किसी जीवने आगामी भव की आयु का बंध कर लिया हो, तो वह जीवन उसी गति में जन्म लेता जिस गति का उसे बंध हुआ हो। ऐसा भी हो सकता है कि किसी जीव की आयु ८१ वर्ष की हो, उसने ७२ वर्ष की उम्र में तिर्यंचगति का बंध किया हो और आगे चलकर वह ८१ वर्ष की उम्र में आत्महत्या कर के तिर्यचगति में ही जन्म लेगा क्योंकि आयुकर्म का बंध होने के बाद संक्रमण नहीं होता। इससे सिद्ध होता है कि आत्मघाती नरकगति में ही जन्मता है, ऐसा नियम नहीं है।

यह बात भी सुनिश्चित है कि आयु कर्म के बंध समय यदि आत्मघात का भाव उत्पन्न होता है तब उस जीव को नियम से नीच गति का ही बंध होता है।

क्या आत्मघाती आगामी सात भव तक आत्मघात करेगा ?

आत्मघाती जीव आगामी सात भव तक आत्मघात करता है ऐसी मान्यता बिलकुल ही कल्पित है। आत्मघात करने से पहले यदि उस जीव को नरक गति का बंध हुआ हो तो वह जीव नियम से ही नरक गति में जन्म धारण करता है, वहाँ नरकगति में आत्मघात हो ही नहीं सकता। यदि नरकगति में आत्मघात हो सकता, तो सभी नारकी वहाँ से आत्मघात कर लेते। परन्तु ऐसा होना कदापि सम्भव नहीं है।

आत्मा कभी नहीं भटकती

एक शरीर को छोडकर आत्मा आगामी देह को धारण करता है। पूर्वदेह को छोडकर आत्मा आयु कर्म के उदयानुसार अधिक से अधिक चार समय में जन्म ले लेता है। इसीलिए ऐसा समझना चाहिए कि मरण

होने के बाद आत्मा कुछ समय के लिये पूर्वदेह के निकट भटकती है, यह मानना उचित नहीं है। यदि आत्मा के भटकने का नाम परिभ्रमण है तो सभी संसारी जीव संसारचक्र में भटक ही रहे हैं।

खास बात तो यह है कि आत्मा जिस देह को त्याज देता है, वहाँ उसके परिवारजन मरण के कारण रागवश दुःखी होते है। जबकि वही आत्मा किसी जगह आगामी देह को धारण करता है तब वहाँ उसके परिवारजन जन्म के कारण रागवश खुश होते हैं। इसप्रकार कहीं मरण का गम होता है तो कहीं जन्म की खुशियाँ मनाई जाती है।

कोई ऐसा भी कह सकते हैं कि मरण के बाद आत्मा किसी माता के गर्भ में प्रवेश करता है, उसके नव माह के बाद जन्म होता है। तो आप ऐसा क्यों कहते हो कि कहीं मरण का दुःख होता है तो उसी समय कहीं खुशी मनाई जाती है?

बात ऐसी है कि जब आत्मा माता के गर्भ में प्रवेश करता है तभी माता-पिता के परमाणुओं के संयोग के देह की उत्पत्ति होती है। गर्भधारण काल में आत्मा जन्म लेता है, उस वक्त माता-पिता काम-भोग की खुशियाँ मनाते है। इससे हम कह सकते है कि जहाँ मरण होता है, वहाँ दुःख होता है और जहाँ जन्म होता है, वहाँ खुशियाँ होती है। चूँकि ऐसा भी नियम नहीं है कि आत्मा मनुष्य देह को छोडकर मरकर आगामी भव में भी मनुष्य भव ही प्राप्त करे। फिर भी जन्म-मरण का स्वरूप स्पष्ट करने के लिए उपरोक्त उदाहरण को उद्धृत किया गया है।

यह एक सत्य घटना है। अमेरिका की शाला में एक शिक्षक विज्ञान पढ़ाते वक्त भारतीय संस्कृति एवं भारतीय दर्शन की निन्दा कर रहे थे। वे अपने विद्यार्थियों को पढ़ा रहे थे कि हिन्दुस्तानी ऐसी बातों में भी विश्वास करते हैं जिसे हम अपनी आँखो से देख भी नहीं सकते, जैसे कि भगवान, आत्मा, कर्म, स्वर्ग-नरक, मोक्ष आदि। परन्तु हमें उन बातों पर विश्वास

नहीं करना चाहिए। हमें ऐसा ही मानना चाहिए कि जिस वस्तु को हम साक्षात् देख सके उसी वस्तु का इस जगत में अस्तित्व है, यदि कोई चीज हमें साक्षात् देखने में नहीं आती, तो हमें समझना चाहिए कि उस चीज का अस्तित्व ही नहीं है। कक्षा के दौरान वहाँ उपस्थित हिन्दुस्तानी से जब बर्दाश्त नहीं हुआ तब उसने शिक्षक को प्रश्न पूछा कि सर, क्या आप का दिमाग देख सकता हूँ ? शिक्षक ने कहा, नहीं, तुम नहीं देख सकते। तब उस विद्यार्थी ने कहा कि, इसका अर्थ तो यह हुआ कि आपको दिमाग ही नहीं हैं !

कहने का तात्पर्य यह है कि हमें प्रत्येक वस्तु को प्रत्यक्ष देखकर ही स्वीकार करने की आवश्यकता नहीं है। धर्म, भगवान, पुनर्जन्म आदि विषय श्रद्धान के विषय है, जब आत्मा निर्मल दशा को प्राप्त होता है तब वह उपरोक्त विषयों को प्रत्यक्ष भी जान लेता है, किन्तु उस निर्मल दशा तक पहूँचने से पहले हमें अनुमान प्रमाण से सत्य का यथार्थ निर्णय करना चाहिए।

असली जन्मदिन

निश्चय से आत्मा अनादि-अनन्त है इसलिए निश्चय से आत्मा का जन्म होने का प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता परन्तु व्यवहार द्रष्टि से भी व्यक्ति जिस दिन अपना जन्मदिन मनाता है, वह दिन उसका वास्तविक जन्मदिन नहीं है, बल्कि ऐसा समझना चाहिए कि जिस दिन मैं आत्मा माता के गर्भ में दाखिल हुआ था, वह दिन मेरा इस भव का जन्मदिन है।

अपनी वास्तविक जन्मतिथि माता-पिता अवश्य जानते होंगे, यह सोचकर कोई बेटा यदि अपने पिता से पूछे कि पिताजी ! मेरा वास्तविक जन्म किस दिन हुआ था अर्थात् गर्भ में किस दिन आया था? तब पिताजी कहेंगे, चूप हो जा, ऐसे सवाल मत पूछ। आगे चलकर वही पिताजी जब वृद्धावस्था में बिमार हालत में अस्पताल में हो, तब वे अपने बेटे से पूछे

कि बेटा ! मेरा कितना समय बचा है? तब बेटा कहेगा कि पिताजी ! चूप जो जाइए, ऐसे सवाल मत पूछिए। तात्पर्य यह है कि पिताजी अपने बेटे की जन्मतिथि नहीं बताते और बेटा अपने पिताजी की मरणतिथि नहीं बताता। हर एक जीव की वास्तविक जन्म और मरण की तिथि और समय तो सिर्फ सर्वज्ञ भगवान ही जानते है, सर्वज्ञ भगवान को तो कोई प्रश्न पूछता ही नहीं है, न तो बाप और न ही बेटा।

जब लोग पूज्य श्री कानजीस्वामीजी से पूछते थे कि आप की उम्र कितनी हुई ? तब उत्तर देते हुए वे कहते थे कि इस देह के पचास साल और नव महिने हुए या साठ साल और नव महिने हुए, कहने का तात्पर्य यह है कि वे गर्भकाल के नव महिने को भी इस मनुष्य भव की आयु में ही समाविष्ट करते हुए बताते थे।

कर्मसिद्धांत द्रष्टि से भी देखा जाये तो किसी जीव को आगामी भव की आयु का स्थितिबंध एक साल का हुआ। तो वह जीव माँ के गर्भ से निकलकर तीन महिने में ही अपनी देह को छोड देगा। गर्भकाल के नव माह और गर्भकाल के पश्चात् तीन माह मिलाकर उसने एक साल की आयु पूर्ण की ऐसा समझना चाहिए।

गर्भपात

मनुष्य के जीवन का आरम्भ माता के गर्भ में ही हो जाता है, इसीलिए ही गर्भपात करने में एक संज्ञी पंचेन्द्रिय मनुष्य की हत्या करने का पाप बँधता है। गर्भपात करनेवाला एवं करानेवाला महापापी है।

जब किसी बच्चे को ठोकर लगती है, तब उसके मुँह से सहज ही निकलता है **'माँ !'** बच्चा भी जानता है कि माँ का कार्य बच्चे की रक्षा करना है। वही माँ निर्दयता से बच्चे की रक्षा करने की बजाय, अपने बेटे की हत्या करा दे, तो उसे माँ कैसे कह सकते है? उसे तो कसाई से भी

अधिक निर्दयी समझना चाहिए। कसाई तो पशुओं को ही मारते हैं, परन्तु इसने तो अपने गर्भ में ही बडे हो रहे अपने ही बच्चे को दुनिया देखने से पहले ही मार दिया।

गर्भपात करनेवाला डॉक्टर भी उस निर्दयी माँ से कम पापी नहीं है। जिसने मरते हुए व्यक्ति को जीवन देने के लिए 'डॉक्टर' का प्रमाणपत्र प्राप्त किया है, वही डॉक्टर किसी को जिन्दगी देने की बजाय अपने हाथ में शस्त्रादि लेकर बेचारे निःशस्त्र बच्चे को मार देता है, ऐसे क्रुर पापी जीव तो पंचेन्द्रिय जीवों की संकल्पी हिंसा के फल में संसारचक्र में परिभमण करते हैं और अनन्तदुःख भोगते है।

सार यह है कि आयुष्य कर्म का सिद्धांत समझ में आ जावें, तो भी जीव तीव्र कषाय से मुक्त हो सकता है। कुछ लोग कहते है कि विदेशों की तुलना में हिन्दुस्तान में प्रदुषण अधिक होने से हिन्दुस्तान में लोग अधिक बिमार पडते हैं। विदेशों की प्रशंसा करते हुए वे कहते हैं कि हम विदेशों में जाते हैं तो वहाँ प्रदुषण रहित वातावरण में कभी बीमार नही पडते। पर मेरा यह कहना है कि भले ही विदेशों में लोग बीमार न पडते हो, पर विदेशों में भी लोग मरते तो हैं। उन्हें प्रदुषण रहित वातावरण मरने से बचा नहीं पाता। मेरे कहने का तात्पर्य सिर्फ इतना ही है कि **मरण किसी को नहीं छोडता परन्तु आत्मा अनुपम अलौकिक पुरूषार्थ करके मरण को छोड सकता है। मरण का हरण कर सकता है। मृत्यु को काल भी कहते है। जो आत्मा काल का काल करके स्वयं अकाल या कालातीत होता है, उसके मौत की ही मौत हो जाती है, वह अमर हो जाता है।**

बृहद सामायिक पाठ में कहा है –

न वैद्या न पुत्रा न विप्रा न शक्रा न कांता न माता न भृत्या न भूपाः।
यमालिंगितं रक्षितुं संति शक्ता विचिंत्येति कार्यं निजं कार्यमार्यैः।।३३।।

''जब मरण आ जाता है तो न वैद्य, न पुत्र, ब्राह्मण, न इन्द्र, न अपनी स्त्री, न माता, न नोकर, न राजा कोई भी बचा नहीं सकते हैं। ऐसा विचार करके आत्मिक काम कर लेना योग्य है, देर न लगानी चाहिए।''

जितना अस्तित्व माना, उतना इन्तझाम किया

जब कोई व्यक्ति ज्योतिष के पास जाता है तब ज्योतिष को कितने ही प्रकार के सवाल पूछता है उन सवालों में उसका आखरी सवाल ऐसा भी होता है कि मेरे जीवन की रेखा कितनी लम्बी है ? इसका मतलब तो यह हुआ कि वह अपने मरने की तारीख पूछ रहा है परन्तु वह अपने जन्म की तारीख क्यों नहीं पूछता? अरे भाई ! जन्म तो हो चुका है, यहाँ तक कि जन्म की पत्रिका लेकर ही मरण की तारीख पूछने गया है। परन्तु वह अपने मोक्ष के बारे में सवाल नहीं पूछता है, साथ ही अगले भव में होनेवाले जन्म होने के बारे में भी सवाल नहीं पूछता है। ऐसा क्यों?

सत्य यह है कि उसे न तो मोक्ष के अस्तित्व पर विश्वास है और न तो आगामी भव में होनेवाले जन्म पर विश्वास है। जब उसे मरण के बाद अपने अस्तित्व का विश्वास ही नहीं है तो फिर उसके बारे में प्रश्न भी कैसे पूछेगा? यही कारण है कि उसका आखरी सवाल इस भव के मरण तक ही होता है।

इस भव में बुढापे तक उसका अस्तित्व रहेगा यह मानकर उसके माता-पिता उसे शादी करने के लिए कहते है। वे कहते है कि बेटा, 'आज तो हम है, कल हम नहीं रहेंगे, जीन्दगीभर के लिए तेरा खयाल कौन रखेगा? इसलिए शादी कर ले।' माता-पिता की सलाह मानकर अपना जीवन साथी खोज लेता है।

आगे चलकर उसे लगता है उसे ऐसा विचार आता है कि बुढापे में मेरे साथ मेरी पत्नी भी बुढी होगी, तो उसकी और मेरी दोनों की सेवा

कौन करेगा? इसके समाधान के लिए बच्चे भी पैदा करता है। वह सोचता है कि आजकल के बच्चे माता-पिता का भी खयाल नहीं रखते, यह सोचकर अपना स्वयं का व्यक्तिगत रूपया भी बैंक में जमा करके रखता है। उसने जवानी में ही बुढापे का यह सब इन्तझाम क्यों किया ? इसका मूल कारण यही है उसे बुढापे में अपने अस्तित्व पर विश्वास परन्तु आगामी भव के लिए कोई सुरक्षा नहीं की क्योंकि उसे आगामी भव में अपने अस्तित्व पर विश्वास ही नही है।

यदि वह बाहरगाँव जाता है, तो दूसरे दिन सुबह पहूँच जायेगा इस बात का भरोसा होने पर भी ट्रेईन देरी पहूँचने की आशंका से अपने साथ सुबह का नाश्ता लेकर जाता है। यद्यपि दो-चार घण्टे ट्रेईन देरी से भी पहूँचे तो भी वह मर नहीं जाता फिर भी सब इन्तझाम पहले से ही करता है। अगले दिन का इतना विचार करके नाश्ता के इन्तझाम करनेवाला आत्मा आगामी भव के लिए आत्मा के नाश्ते के बारे में विचार क्यों नहीं करता है?

यदि उसे बाहरगाँव चार दिन तक रहना हो, तो चार दिन के लिए इन्तझाम करता है। यदि उसे दस दिन तक रहना हो, तो दस दिन के लिए इन्तझाम करता है। जितना अस्तित्व मानता है, उतना इन्तझाम करता है।

ज्ञानी मानते हैं कि मेरा अस्तित्व अनन्त काल तक रहेगा, इसलिए ज्ञानी अपने अस्तित्व के अनुसार इन्तझाम करते है। अनन्त का इन्तझाम भी अनन्त से ही करते है। अनन्त काल तक का इन्तझाम करते हुए अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख एवं अनन्त वीर्य प्रकट करते हैं।

अज्ञानी का सुख आखिर दुःख

अज्ञानी अपने दुःख और सुख का आधार बाह्य संयोगो को मानता है। कितने ही लोग कहते हैं कि हम मुम्बई में रहते हैं, इतनी सुविधाएँ भोगते हैं फिर भी हम संतुष्ट नहीं हैं, अपने को निरन्तर दुःखी ही अनुभव

करते हैं। वे स्वयं को इन्द्रिय विषयभोगों के सद्भाव में सुखी मानते हैं। वे इस बात को नहीं मानते हैं कि पाँच इन्द्रिय के विषयभोग क्षणिक है, तो फिर विषयभोगों में माना हुआ सुख नित्य कैसे टिक सकता है? अर्थात् कदापि नहीं टिक सकता।

पाहुडदोहा में यहाँ तक कहा है –

विसया–सुह दुइ दिवहडा पुणु दुक्खहं परिवाडि ।
भुल्लउ जीव म बाहि तुहं अप्पाखंधि कुहाडि ।।१८।।

''विषयों के सुख तो दो दिन हैं। फिर, दुःखों की परिपाटी चलेगी। इसलिए **हे भोले जीव ! तुम अपने कन्धे पर कुल्हाडी मत मारो।**''

सार यह है कि जैसे अपने कन्धे पर कुल्हाडी मारने से अपना ही मरण हो सकता है, वैसे ही विषयों के सुख तो जीव को नरक में डूबाने वाले हैं। जब अल्प प्रतिकूलता भी आ जाती है, तब अज्ञानी अपने को अत्यंत दुःखी मानने लगता है, उसे समझाते हुए उसके हितचिंतक उसे कहते है कि हे भाई ! तुम दुःखी मत हो, अभी तो तुम्हें मालूम ही नहीं है कि दुःख किसे कहते है ? एक काम करो, तुम बिहार जाकर देखो, जब वहाँ पर दुःख देखोगे तब आप को पता चलेगा कि तुम यहाँ कितने सुखी हो। अज्ञानी हितचिंतक जीवों के इसप्रकार के सांत्वनारूप उपदेश से स्पष्ट प्रतीत होता है कि अज्ञानी जीव पाँच इन्द्रिय के विषयभोगों की प्राप्ति जिन्हें सुलभ है ऐसे मुम्बईवासियों को सुखी और विषयभोगों के अभाव में बिहारवासियों को दुःखी मानते हैं।

जबकि ज्ञानी यह मानते हैं कि व्याकुलता और मोह के कारण मुम्बई में दुःख ही है और निराकुलता के कारण बिहार में सुख ही है। दुःख का आधार व्याकुलता और सुख का आधार निराकुलता है।

अज्ञानी जब किसी धनवान की आधुनिक जीवन शैली को देखता

है, तब उसे बाह्य विषयभोगों को भोगनेवाला धनवान सुखी लगता है। बस इसीलिए ही बाह्यभोग और भोगने के भाव को छोड देने वाले, मिथ्यात्व और वस्त्रादि परिग्रह के त्यागी साधुजन अज्ञानी को कष्ट सहन करनेवाले लगते हैं।

जब तक अज्ञानी किसी ज्ञानी साधु–संत को कष्ट सहन करनेवाले मानेगा तब तक वह स्वयं कभी भी साधु होना नहीं चाहेगा। क्योंकि सभी जीव सुखी होना चाहते है, कष्ट सहन करना कोई नहीं चाहता।

इससे यह बात सिद्ध होती है कि साधु बनने से पहले साधुदशा सुखमय लगनी चाहिए, यहाँ तक कि सुखी होने के लिए, मरण का हरण करने के लिए इसके अलावा दूसरा कोई उपाय नहीं है। **चाहत का दूसरा नाम दुःख है, चाहत के अभाव को ही सुख कहते है।**

कुछ लोग ऐसा भी कहते है कि अब हमें कोई चाहत नहीं रही, हमें अपने लिए कुछ भी नहीं चाहिए। बस, मेरे बेटे की इच्छा पूर्ण हो जाये। ज्ञानी कहते हैं कि अपनी चाहत तो इच्छा है ही, साथ में दूसरों की चाहत पूर्ति की कामना करना यह भी एक अपनी ही चाहत है।

जब हिन्दुस्तानी को पूछा कि तुम्हारी क्या इच्छा है तब वह बोला, पाकिस्तान का नाश हो जाये। जब पाकिस्तानी को पूछा कि तुम्हारी क्या इच्छा है तब वह बोला, हिन्दुस्तान का नाश हो जाये। इन दोनों हिन्दुस्तानी और पाकिस्तानी ने अपनी इच्छा जब व्यक्त की तब अमेरिकन को पूछा गया कि बताओ, तुम्हारी क्या इच्छा है? तब वह बोला, मेरी कोई इच्छा नहीं है, बस हिन्दुस्तानी और पाकिस्तानी की इच्छा पूर्ण हो जाये। इससे हम समझ सकते हैं कि दूसरों की इच्छा पूर्ण करने का भाव भी बहुत खतरनाक एवं कष्टदायक होता है। इसप्रकार की इच्छाएँ अज्ञानी को इच्छा ही नहीं लगती।

लोक में ऐसा एक भी आत्मा नहीं है जिसकी सम्पूर्ण इच्छा

फलित हुई हो। परन्तु लोकाग्र में ऐसे अनन्त आत्मा है, जिनकी अनन्त इच्छा का सर्वथा नाश हुआ है। इच्छा की पूर्ति करने की बजाय इच्छा का नाश करना ही सुखी होने का उपाय है। ज्ञानी की द्रष्टि में आयु पूर्ण हो जाये किन्तु चाहत पूर्ण न हो, वह संसार है। साथ ही आयु एवं चाहत दोनों का अन्त आना ही मुक्ति है।

आनन्द-मंगल

जब मैं अपने एक मित्र को पूछता हूँ कि आज-कल कैसा चल रहा है ? तो वे आनन्द और मंगल का भेद करते हुए कहते हैं कि बस, मैं आनन्द में हूँ और मंगल की ओर जा रहा हूँ। वे कहते हैं कि बाह्य सुख का नाम आनन्द है और आंतरिक सुख का नाम मंगल है। अनादिकाल से इस आत्मा ने आनन्द तो अनेक बार लिया परन्तु आजतक मंगल एक भी बार नहीं किया।

जिस सुख के पीछे दुःख खडा हो, वह सुख भी दुःख ही है। पाँच इन्द्रियों के विषयसुख क्षणिक होने से दुःख ही है। भोग एवं भोग के प्रारम्भ में सुख लगता है और अन्त में दुःख। जिसके अन्त में दुःख ही छुपा हो, उसके प्रारम्भ का सुख भी किस काम का? आनन्द का कंद शुद्धात्मा जमीनकंद खाकर अपने को सुखी माने, तो उससे बडा मूर्ख इस जगत में दूसरा कौन होगा ?

आत्मानुशासन में कहा है -

शरीरमयि पुण्णन्ति सेवन्ते विषयानपि ।
तस्त्यहो दुष्करं नणां विषाद्वाञ्छन्तिं जीवितम् ।।१९६।।

''मनुष्य सदा ही शरीर को पोषते हैं व विषयभोगों को भोगते रहते हैं। इससे बढकर और खोटा कृत्य क्या होगा। वे विष पीकर जीवन चाहते हैं। भवभव में कष्ट पायेंगे।''

संसार स्वयं विष स्वरुप है। विष कड़वा हो या मीठा हो, विष तो विष ही होता है। यदि संसार में सुख होता तो चक्रवर्ती आदि महापुरुष पाँच इन्द्रियों के विषयभोगों को छोडकर त्याग एवं वैराग्य के मार्ग को क्यों चुनते ? हमें भी ज्ञानियों के संसार की क्षणभंगुरता के निर्णय पर द्रढ श्रद्धान करना चाहिए।

इसलिए पाहुडदोहा में भी कहा है -

खंतु पिवंतु वि जीव जइ प्पवहि सामगमोक्खु ।
रिसहु भडारउ किं चवइ सयलु वि इंदियसोक्खु ।।६४।।

''हे जीव ! यदि तुम खाते-पीते हुए शाश्वत मोक्ष पाना चाहते हो (तो यह तुम्हारी भूल है), तो महाराज ऋषभदेव ने सम्पूर्ण इन्द्रियों का सुख क्यों त्यागा? (वास्तव में सुख इन्द्रियों में नहीं, अपने अतीन्द्रिय निर्विकल्प स्वभाव में है।)''

संसार में रहने वाले सामाजिक प्राणी स्त्री-पुरूष ही नहीं, पशु-पक्षी, कीट-पतंगे भी अपनी भूख-प्यास शान्त कर भौतिक सुखों की इच्छाएँ करते हैं। भोजन-पान, नींद-विश्राम, तरह-तरह के भव और उनका संरक्षण एवं इन्द्रियों के विषय-भोगों में रात-दिन लिप्त रहते हैं। बौद्धिक प्राणी भी ऐसा मानते हैं कि यदि भौतिक समृद्धि न हो, तो फिर जीवन क्या है। मनुष्य की सम्पूर्ण जीवन-कथा इन्द्रियों की तथा मानसिक तुष्टि-पुष्टि से भरपूर है। इसलिए परमात्मा और धर्म को मानने वाले भी भौतिकता की धूल को नहीं झड़ा पाते हैं।

सम्यग्दर्शन के प्राप्ति हुए बिना अतीन्द्रिय सुख कदापि प्रकट नहीं हो सकता। सम्यग्दर्शन की महिमा बताते हुए पूज्य श्री कानजीस्वामी कहते थे कि **सम्यग्दर्शन के बिना चक्रवर्ती पद मिलें तो भी वह दुःखरुप है, इतना ही नहीं, बल्कि सम्यग्दर्शन के साथ सातवें नरक में भी जीव सुखी है।** सम्यग्दर्शन के बिना इच्छा का अभाव नहीं होता है।

कर्म की गति न्यारी

आज के इस आधुनिक भौतिक युग में जिनवाणी माता और पंचपरमेष्ठीरुपी पिता की सेवा करनेवाले सपूत मिलना कठिन है, साथ ही व्यवहार मार्ग में अपने माँ-बाप की सेवा करनेवाले सपूत मिलना भी दुर्लभ है। आज-कल माँ-बाप की सेवा करने के लिए बेटे के पास समय भी कहाँ है ? हाँ, उस बेटे के पास अपने बच्चों की माँ अर्थात् अपनी पत्नी की सेवा करने के लिए समय ही समय है।

एक माँ के पाँच बेटे थे। पाँच बेटे को माँ ने बडी मेहनत से पढ़ाया-लिखाया। जब वे पाँचो बेटे बडे हुए, तब पाँचो बेटे ने पाँच बंगले खरीदे। किन्तु जब माँ को घर में रखने का प्रश्न उपस्थित हुआ, तब एक भी बेटा अपनी माँ को अपने घर में रखने के लिए तैयार नहीं हुआ। तब उस माँ ने वृद्धाश्रम में रहना ही उचित समझा। ऐसी अत्यंत दयनीय स्थिति है, आज के कलियुग में। **किसी ने कहा है कि जिन पाँच बेटों को माँ ने अपने पेट में रहने के लिए जगह दी, उन्हीं पाँच बेटों के बंगले में एक माँ को रहने के लिए जगह नहीं है। इसीका नाम कलियुग है, फिर भी ज्ञानी तो यही कहते हैं कि आज की घटना आनेवाले कल के लिए भूतकाल है, सिर्फ याद ही है। भूतकाल तो भूलने के लिए ही होता है।**

पहले के जमाने में इतनी अधिक पढ़ाई नहीं होती थी। आज के इस युग में शिक्षा का स्तर बढ़ता गया उतने ही वृद्धाश्रम भी बढ़ते गए। पहले बेटा पढ़ा-लिखा नहीं होने से अपने माँ-बाप के खर्च का हिसाब नहीं जानता था। आज के युग में बेटा पढ़-लिखकर अपने माँ-बाप के खर्च का हिसाब करने लगा, यही वजह है कि वृद्धाश्रम बढ़ते गए !

कभी-कभी ऐसा देखा जाता है कि माँ-बाप की सेवा के लिए

बेटे ने चार-चार नर्स आदि रखकर सभी प्रकार की सुविधाएँ उपलब्ध करा दी हो। परन्तु बेटे के पास ही इतना समय नहीं हो कि वह स्वयं अपने माँ-बाप की सेवा कर सके। इतना ही नहीं, आज के जमाने में माँ-बाप के पास भी बेटे का ध्यान रखने के लिए समय नहीं हैं। बस आधुनिक माँ-बाप तो बच्चे का खयाल रखने के लिए 'आया' रख लेते हैं और दिनभर अपने काम में व्यस्त रहते हैं।

इसलिए जगत में अधिकांश ऐसा होता है कि **जो माँ-बाप अपने बच्चे का स्वयं ध्यान नहीं रखते, बच्चे को 'आया' के भरोसे पर छोड देते हैं, उनके बच्चे भी बडे होकर माँ-बाप की सेवा खुद नहीं करके माँ-बाप को 'नर्स' के भरोसे पर छोड देते हैं।**

जगत में ऐसा भी होता है कि जब बाप बीमार होता है, तब बेटी जाती है डॉक्टर के पास और बेटा जाता है वकील के पास। बेटी चाहती है कि मैं अपने बाप को बचा लूँ और बेटा चाहता है कि मैं अपने बाप की सम्पति को पचा लूँ। इस कारण बेटा ही बाप को अग्निसंस्कार दे सके ऐसा नियम बना होगा, क्योंकि बेटा ही बाप को जला सकता है, बेटी नहीं। चाहे बाप के मरने के बाद या मरने से पहले ! आध्यात्मिक द्रष्टिकोण से ये सब बातें तो कल्पना लोक की उड़ान ही समजो।

वास्तविक स्थिति यह है कि आत्मा के द्वारा स्वयं किये गए कर्मों का फल आत्मा को अवश्य भुगतना पडता है। हर एक जीव अपनी लेन-देन ही पूरी कर रहा है, कोई किसी को मार नहीं सकता और कोई किसी को बचा भी नहीं सकता। किये हुए कर्मों का फल तो आत्मा को अवश्य ही भुगतना पडता है, आज नहीं तो कल ! चूँकि इस भव में किये हुए कर्मो का फल अगले भव में मिलेगा ऐसा नियम नहीं है। ऐसा भी हो सकता है कि बँधे हुए कर्मों की स्थिति यदि इस भव की शेष आयु से अल्प हो तो वे कर्म इस भव में भी जीव को फल दे सकते हैं।

मनुष्य जीवन की तीन अवस्थायें होती हैं। बाल्यावस्था, युवावस्था एवं वृद्धावस्था। इन तीनों अवस्थाओं में हम देखते हैं कि सबसे अधिक सरलता बाल्यावस्था में पाई जाती है। बाल्यावस्था में अधिकतम सरल परिणाम होने के कारण बच्चे को पुण्य कर्म का बंध होता है।

एक निर्धन परिवार में एक दम्पति और उसका एक आठ साल का बेटा रहता था। एक दिन उनके घर पर चार मेहमान आये। भारतीय परंपरा में अतिथि को भगवान का रुप माना जाता है। जिनके आने की या जाने की कोई निश्चित तिथि नहीं होती, उन्हें अतिथि कहते हैं।

अपने घर पर आये हुए मेहमानों को खिलाने-पिलाने के लिए भी इनके पास पैसे नहीं थे। फिर भी पत्नी ने पति से कहा कि, आप बाजार से उधार चीजवस्तु ले आओ, हम दुकानदार को शाम को ही पैसे लौटा देंगे।

यह भारतीय संस्कृति है कि **मेजबान के घर से मेहमान कुछ न कुछ खाये-पीये बिना जाते नहीं हैं और वापिस लौटते वक्त मेहमान अपनी शक्ति के अनुसार मेजबान के बच्चों को कुछ पैसे आदि दिये बिना जाते नहीं हैं।** पत्नी ने भी यही सोचा कि जब मेहमान वापिस लौटेंगे तब वे हमारे बेटे के हाथ में कुछ पैसे देकर जायेंगे और उसी पैसे को हम दुकानदार को शाम को चूका देंगे। पति ने बाजार से पाँच रुपये की खाद्यवस्तु लेकर घर आया और पत्नी को खाना बनाने के लिए कहा। इस बात को बेटे ने भी ध्यान से सुना।

उन्होंने मेहमानों को खिलाया-पिलाया। जब मेहमानों का वापिस लौटने का अवसर आया तब उन मेहमानों में से किसी एक मेहमान ने जाते-जाते मेजबान के बेटे को अपने नजदीक बुलाया और उसके हाथ में पैसे देने लगे। तब बेटा बोला, ''नहीं, मुझे नहीं चाहिए।'' तब वे पति-पत्नी कुछ देर के लिए चिंता में पड गये। वे बोले कि बेटा ! पैसे ले लो,

यदि मेहमान से पैसे नहीं लोगे तो मेहमान को बुरा लगेगा।

बार-बार माता-पिता के आग्रह करने पर जब उस बेटे से नहीं रहा गया, तब वह उन मेहमानों के सामने ही बोला, आपने उस दुकानदार को पाँच रुपये चुकाने का वचन दिया है और ये मेहमान मुझे दो रुपये ही दे रहे है। बेटे के मुख के निर्दोषभाव से यह सुनकर वहाँ उपस्थित सभी लोग आश्चर्यचकित हो गये।

इस प्रसंग से हम समझ सकते है कि बच्चा बचपन से ही भोला होता है। भोलेपन के कारण बच्चा पुण्य कर्म बाँधता है, कभी-कभी ऐसा भी होता है कि पुण्य कर्म के फल में आगे चलकर वह बच्चा युवावस्था में पाँच इन्द्रियों के विषयभोगों को प्राप्त करता है, विषयभोगों को भोगकर वह युवान पाप कर्म को बाँधता है, जिसके फल में वृद्धावस्था में असह्य पीड़ा सहन करता है, आधि एवं व्याधि का कष्ट सहन करता है। यह तो एक ही भव में नजर के सामने ही दिखाई देनेवाला कर्म का साक्षात् फल है। चूँकि ऐसा नियम नहीं है कि बचपन की सरलता के फल में ही जवानी के भोग मिलें हो या जवानी के भोग के फल में बुढापें में कष्ट सहन करना पडा हो। तदपि कर्म सिद्धांत को युक्तियुक्त समझाने के लिए उपरोक्त उदाहरण दिया गया है।

अज्ञानी को संसार दुःखरुप क्यों नहीं लगता ?

बाल्यावस्था और वृद्धावस्था में जीव अधिक दुःखी होता है क्योंकि वे अवस्थाएँ परावलम्बी है। ज्ञान अत्यन्त अल्प होने से उसे बचपन एवं बुढापे में भोगा हुआ दुःख याद नहीं रहता। जब जीव में स्मरण शक्ति द्रढ होती है, तब उस पर युवावस्था में विषयभोगों का रंग लगा होता है, बस इसलिए ही अज्ञानी को विषयभोगों का सुख ही याद रहता है और संसार स्वभावतः दुःख स्वरूप है, ऐसा कभी एहसास नहीं होता।

आत्मानुशासन में कहा है –

बाल्ये वेत्सि न किंञ्चिदप्यपरिपूर्णांङ्गो हितं वाहितं ।
कामान्धः खलु कामिनीद्रुमघने भ्राम्यन्वने यौवने ।।८८।।
मध्ये वृद्धतृषार्ज्जितुं वसुपशुः क्लिश्नासि कृष्यादिभि–
र्वृद्धो वार्द्धमृतः क्व जन्मफलिते धर्मो भवेन्निर्मलः ।।८९।।

''बालवय में अंग ही पूरे नहीं बनते तब अज्ञानी अपने हित या अहित का विचार नहीं कर सकता है। युवानी में काम से अन्धा होकर स्त्रीरूपी वृक्षों से भरे वन में भटकता रहता है। मध्यकाल में तृष्णा की वृद्धि करके अज्ञानी प्राणी खेती आदि धन्धों से धन को कमान में कष्ट पाया करता है। इतने में बुढ़ापा आ जाता है तब अधमरा हो जाता है। भला हम मानव जन्म को सफल करने के लिए निर्मल धर्म को कहाँ करें? मानव अपना अमूल्य जीवन विषयों के पीछे ही गवाँ देता है। आत्महित नहीं करके भवभ्रमण में ही दुःख उठाता है।''

जिस अवस्था में जीव सर्वाधिक विषयों को भोग सकता है, उस अवस्था में जीव सर्वाधिक आत्मसाधना भी कर सकता है। पूर्व में हो चुके अधिकांश ज्ञानियों ने बुढापे में संन्यास न लेकर जवानी में ही अपने को त्याग के मार्ग पर मोड़ दिया था।

बचपन और बुढापे में शारीरिक रूप से शक्तिहीन होने से और ज्ञान भी अल्प होने से बचपन और बुढापे वस्तु स्वरूप को स्पष्टरूप से नहीं समजता। आज हम देखते हैं कि आज के नवजवानों को किसी भी विषय पर हमें ज्ञान देना हो तो उन्हें युक्ति, तर्क और द्रष्टांत के माध्यम से बालक और वृद्ध की अपेक्षा अधिक सरलता से समझा सकते हैं।

अत्यन्त दुःख की बात यह है कि **अज्ञानी जवानी में वह मुख्यरुप से दो विषयों में अटक जाता है, पहला– तन सम्बन्धी सुख और दूसरा– धन सम्बन्धी सुख। यदि कोई युवान अवस्था में इन दोनों शत्रुओं पर विजय पा लेवें, तो वह जीव निश्चितरुप से अध्यात्म मार्ग पर चलकर अपने मनुष्यभव को सफल बना सकता है, मरण का हरण कर सकता है।**

काम के कारण ही नाकाम रहा

अनन्त शक्तियों का स्वामी आत्मा काम के आवेग में आकर अपना हित करने में नाकाम रहा। पाँच इन्द्रिय के विषयभोगों में काम को सबसे पहली इन्द्रिय में स्थान मिला है। जिस जीव ने काम भाव को समेट लिया है, उस जीव ने संसारचक्र को ही रोक दिया है, ऐसा समझो।

जब जीव कामांध हो जाता है, तब वह आग के बिना भी जलता है। आगम में अनेक स्थानों पर कामविकार का स्वरुप समझाया है।

मरणकण्डिका नामक ग्रंथ में काम के दस वेग कहे है –

शोचति प्रथम वेगे, द्वितीये तां दिदृक्षते ।
तृतीये निश्वसित्युच्चैर्ज्वरस्तुर्ये प्रवर्तते ।।९२७।।
दह्यते पञ्चमे गात्रं, भक्तं षष्ठे न रोचते ।
प्रयाति सप्तमे मूर्च्छामुन्मत्तो जायतेऽष्टमे ।।९२८।।
न वेत्ति नवमे किञ्चिद्दशमे मुच्यतेऽसुभिः ।
संकल्पतस्ततो वेगास्तीव्रा मन्दा भवन्ति वा ।।९२९।।

''किसी स्त्री को देखकर पुरुष के मन में जब कामवासना उत्पन्न हो जाती है तब उस कामी की दस प्रकार की चेष्टाएँ होती है, उन्हें ही कामी के दस वेग कहते हैं।

प्रथम वेग में कामी शोकयुक्त होता है, दूसरे में इष्ट स्त्री को देखने की इच्छा करता है, तीसरे वेग में जोर–जोर से श्वास लेने लगता है, चौथे

वेग में ज्वर आ जाता है, पाँचवे में शरीर जलने लगता है, छठे में भोजन नहीं रुचता, सातवें में मूर्च्छा आ जाती है, आठवें में पागल सद्रश हो जाता है, नौवें वेग में कुछ जान नहीं पाता और दसवें वेग में मरण को प्राप्त हो जाता है। कामान्ध पुरुष के ये दस वेग संकल्प-वासनानुसार तीव्र या मन्द हुआ करते हैं। अर्थात् किसी कामी को मन्दरुप, किसी को तीवरुप, किसी को दो-तीन या चार-पाँच आदि आकर भी रुक जाते है। कोई-कोई कामी गुरुजनों की या सज्जन पुरुषों की शिक्षा प्राप्त कर सुमार्ग पर भी आ जाते हैं।

ज्येष्ठमास के शुक्ल पक्ष की मध्याह्न बेला में आकाश के निर्मल रहते हुए सूर्य भी वैसा नहीं जलाता जैसा मनुष्य को वृद्धिंगत होता हुआ काम जलाता है अर्थात् ज्येष्ठमास के सूर्यताप से भी इस काम का ताप प्रचण्ड एवं असह्य है। सूर्याग्नि तो केवल दिन को ही जलाती है किन्तु कामाग्नि रात-दिन जलाती है। सूर्य के ताप से बचने के उपाय तो छाता आदि है किन्तु कामाग्नि से बचने का कोई उपाय नहीं है। अग्नि को तो जल से शान्त किया जा सकता है, किन्तु कामाग्नि किसी के द्वारा भी शान्त नहीं होती। अग्नि तो बाह्य शरीर को ही जलाती है किन्तु कामाग्नि बाह्याभ्यन्तर अर्थात् शरीर और आत्मा दोनों को जलाती है।

कामातुर मनुष्य अपने बन्धुजन, जाति, कुल, धर्म और साथ में रहनेवाले मित्रादि की भी अवमानना करके निन्दित कार्य करता है। जिस पुरुष का मन स्त्रियों के मनोहर गन्ध, रूप, रस, स्पर्श और शब्द में कभी आकर्षित नहीं होता, उसीका ब्रह्मचर्य व्रत अखण्डित रहता है।

जिसप्रकार समीप आये हुए हाथी को सिंहनी खा जाती है, समीप आये हुए मत्स्य को बगुली शीघ्र ही खा जाती है, मयूरी सर्प को मार डालती है एवं बिल्ली चूहे को खा जाती है, उसीप्रकार निर्दय हृदय कुशील स्त्री यदि संयत मुनि के समीप आ जावे तो वह उनके संयम को नष्ट कर डालती है, अतः स्त्री की निकटता सदैव त्याज्य है। दूर से ही छोडने योग्य है।''

संगति की असर हुए बिना नहीं रहती। इसलिए ही ज्ञानियों ने सत्संग की अत्यंत महिमा बताई है।

आचार्य अमितगति धर्मपरीक्षा-६ में कहते है -

यतो जोषयते क्षिप्रं विश्वं योषा ततो मता ।
यतो रमयते पापे रमणी भणिता ततः ।।१६।।
यतो मारयते पृथ्वीं कुमारी गदिता ततः ।
विदधाति यतः कोषं भामिनी भण्यते ततः ।।१७।।

''स्त्री चूँकि समस्त विश्व को शीघ्र ही नष्ट किया करती है, अतएव वह 'योषा' मानी गई है। तथा वह चूँकि विश्व को पाप में रमाती है, अत एव वह 'रमणी' कही जाती है।

वह पृथ्वी (कु) को मारने के कारण 'कुमारी' तथा क्रोध करने के कारण 'भामिनी' कही जाती है।''

जब शरीर स्वभाव से ही अशुचिमय है तो वह अन्य को कैसे सुख दे सकता है ? देह स्वयं भी अशुचिमय है और संयोग में आनेवाले अन्य पदार्थो को भी अशुचिमय बना देती है।

धर्मपरीक्षा में कहा भी है -

''लार, थूक, कफ और दाँतों के कीडों से व्याप्त स्त्री के मुख के लिए चतुर कवि चन्द्र की उपमा कैसे दिया करते हैं?

मांस की गांठों के समान जो स्त्री के दोनों स्तन मिट्टी आदि के लौंधों के समान (अथवा फोडों के समान) है उन्हें तीक्ष्ण बुद्धिवाले कवि सुवर्ण के घडों के समान कैसे बतलाते हैं?

सम्पूर्ण अपवित्रता के स्थानभूत स्त्री और पुरुष के छेदों (जननेन्द्रियों) के संयोग को चतुर पुरुष अपवित्र (मल से परिपूर्ण) दो घडों के संयोग के समान मानते हैं।

रागरुप लहरों से सम्पन्न स्त्रीरुपी नदी पुरुषरूप वृक्षों को उखाडकर बार-बार ले जाती है और संसाररुप समुद्र में फेंक देती है।

जो स्त्री नीच पुरुषों को अनुरक्त करके नरकरुप घर (नारकबिल) में पटक देती है और स्वयं साथ में नहीं जाती है उसका सेवन विद्वान मनुष्य कैसे किया करते हैं ? अर्थात् विवेकीजनों को उसका सेवन करना उचित नहीं है।''

अज्ञानी को अपने एवं पराये तन में आसक्त नहीं होने के लिए तन सम्बन्धी इतना वर्णन पर्याप्त है। अब धन में आसक्त नहीं होने की प्रेरणा देने के लक्ष्य से धन को धूल की उपमा देते हैं।

अज्ञानी धन को धूल समान क्यों नहीं मानता ?

तन सम्बन्धी विषय भोगों के अतिरिक्त अज्ञानी धन को भी अपना प्राण समझता है इसलिए वह अपने जीवन का अधिकांश काल धन इकट्ठा करने में ही बरबाद कर देता है।

मरणकण्डिका में कहा है -

क्रोधं लोभं भयं मायां, विद्वेषमरतिं रतिम् ।
द्रवणार्थी निशा-भुक्तिं, विदधाति विचेतनः ।।११८३।।

''धन का इच्छुक मोहित पुरुष क्रोध, लोभ, भय, माया, विद्वेष, अरति, रति एवं रात्रिभोजनादि अनेक पाप करता है।''

धर्मपरीक्षा में कहा है -

अर्था महिश्वराः प्राणाः सर्वव्यापारकारिणः।
म्रियन्ते सहसा मर्त्यास्तेषां व्यपगमे सति ।।५१।।
धर्मो बन्धुः पिता पुत्रः कान्तिः कीर्तिर्मतिः प्रिया ।
मुषिता मुष्णता द्रव्यं समस्ताः सन्ति शर्मदाः ।।५२।।

एकस्यैकक्षणं दुःखं जायते मरणे सति ।
आजन्म सकुटुम्बस्य पुंसो द्रव्यविलोपने ।।५३।।

''सब ही व्यवहार को सिद्ध करनेवाले धन-सुवर्ण, चांदी, धान्य मनुष्यों के बाह्य में संचार करनेवाले प्राणों के समान हैं। इसका कारण यह है कि उनका विनाश होने पर मनुष्य अकस्मात मरण को प्राप्त हो जाते है।

जो दूसरे के धन का अपहरण करता है वह उसके धर्म, बन्धु, पिता, पुत्र, कान्ति, कीर्ति, बुद्धि और प्रिय पत्नी का अपहरण करता है; ऐसा समझना चाहिए। कारण यह कि वे सब उस धन के रहने पर ही सब कुछ-सब प्रकार के सुख को-दिया करते हैं, बिना धन के वे भी दुःख के कारण हो जाते हैं।

मनुष्य को किसी एक का मरण हो जाने पर एक क्षण के लिए-कुछ थोडे ही काल के लिए दुःख होता है, परन्तु अन्य के द्वारा धन अपहरण किये जाने पर वह जीवनपर्यन्त सब कुटुम्ब के साथ दुःखी रहता है।''

यद्यपि सामान्यजन में लालच का भाव पाया जाना यह स्वाभाविक है, तथापि लालच की पूर्ति करने के साधन भी दो प्रकार के होते है। कोई व्यक्ति अपने लोभ कषाय की पूर्ति हेतु हिंसा, जूठ, चोरी आदि पाप करता है, जबकि कोई दूसरा व्यक्ति न्याय और नीति के मार्ग पर चलकर अपने लोभ की पूर्ति करना चाहता है।

कोई ऐसा सोचते है कि किसी की गाडी को मैं छीन लूँ और कोई ऐसा सोचते है कि किसी की गाडी तो मुझे नहीं चाहिए, परन्तु उसके जैसी गाडी मैं मेहनत करके रुपये कमाकर खरीदुँगा। ऐसा ही लाडी (स्त्री) एवं वाडी (घर) के बारे में भी समझना चाहिए।

लेने के नाम बंधन है और छोडने का नाम छुटना है अर्थात् मुक्ति है। किसीने कहा है कि यदि आप बंधन नहीं चाहते हो तो किसी से कुछ

भी मत लो। संसार से छूटने के लिए नियम से बंधन अत्यंत आवश्यक है। इसलिए यदि तुम मुक्ति चाहते हो तो किसी का लिया हुआ भी वापिस लौटा दो, ऐसा ज्ञानी कहते है। चोरी करना तो चोरी ही है साथ साथ चोरी किए हुए माल का भोग-उपभोग करना भी चोरी है।

क्या माँ को रुलाकर कोई सुखी हो सकता है ?

जब कोई वैरागी धर्मात्मा दीक्षा लेने से पूर्व अपने माता-पिता की आज्ञा लेने जाता है, तब माँ के द्वारा बेटे को वन जाने से रोकने पर भी बेटा रुकता नहीं है, वहाँ बेटे का नहीं रोना और माँ का रोना स्वाभाविक ही है क्योंकि वैराग्य बेटे को जागृत हुआ है, माँ को नहीं।

तब यह प्रश्न होता ही है कि क्या माँ को रुलाकर दीक्षा लेने वाला बेटा कभी सुखी हो सकता है? उत्तर यह है कि अवश्य हो सकता है यदि बेटे का अभिप्राय सत्य हो तो ! बेटा जानता है कि मैं दीक्षा अंगीकार कर रहा हूँ इसीलिए माँ रो रही है, परन्तु यदि मैंने इस भव में दीक्षा अंगीकार नहीं की, तो भविष्य में अनंत जन्म-मरण होंगे। बेटा इसी भव में दीक्षा लेना चाहता है, जिससे भविष्य में जन्म देनेवाली अनन्त माताओं को कष्ट नहीं पहूँचे। भविष्य में अनन्त जन्म लेकर अनन्त माँ को न रुलाने के हेतु से बेटा इस भव के माँ-बाप को भी छोडकर दीक्षा लेता है। ऐसे अभिप्राय से शुद्धोपयोगरूप धर्म धारण करने के लक्ष्य से दीक्षा लेनेवाला बेटा इस भव की माँ को रोता हुआ छोडकर भी सुखी हो सकता है, बस यही अजर-अमर होने का उपाय है।

वर्तमान में अनन्त सिद्ध परमात्मा सिद्धशिला पर अनन्त सुख को भोग रहे है। वे मुनिदीक्षा अंगीकार किये बिना सिद्धदशा को प्राप्त नहीं हुए हैं। जब उन्होंने दीक्षा अंगीकार की होगी तब उनकी मातायें रोई भी होंगी क्योंकि वैराग्य बेटे को आया था, माता को नहीं। माता को रोता

हुआ छोडकर भी बेटा मुनिदीक्षा अंगीकार करके परमात्मपद पाकर अनन्त सुखी होता हैं।

योगसार में कहा है -

जइ जर-मरण-करालियउ तो जिय धम्म करेहि ।
धम्म-रसायणु पियहि तुहुँ जिम अजरामर होहि ।।४६।।

''हे जीव ! यदि जरा व मरण के दुःखों से भयभीत है तो धर्म कर, तू धर्मरसायण को पी जिससे तू अजर अमर हो जावे।''

मनुष्यगति को लक्ष्य में लेकर कहा है कि यहाँ जरा व मरण के भयानक दुःख है। जब जरा आ जाती है, शरीर शिथिल हो जाता है, अपने शरीर की सेवा स्वयं करने को असमर्थ हो जाता है, इन्द्रियों में शक्ति घट जाती है, आँख की ज्योति कम पड जाती है, कानों में सुनने की शक्ति कम हो जाती है, दाँत गिर जाते है, कमर टेढी हो जाती है, हाथ पाँव हिलने लगते है, खाने पीने में कष्ट पाता है, चलने बैठने में पीडा पाता है।

इच्छानुसार समय पर भोजनपान नहीं मिलता है। अपने कुटुम्बीजन भी आज्ञा उल्लंघन करने लग जाते है। तन में विषयों के भोग करने की शक्ति घट जाती है, परन्तु भोग की तृष्णा बढ जाती है। तब चाह की दाह से जलता है, गमन नहीं कर पाता है, रातदिन मरण की भावना भाता है। जरा महान दुःखदायी मरण की दूती है, शरीर की दशा क्षणभंगुर है, युवावय थोडा काल रहती है फिर यकायक बुढापा आ घेरता है तब एक एक दिन भी एक वर्ष के बराबर बीतता है।

मरण का दुःख भी भयानक होता है। जीव को मरने से पहले महान कष्टदायक रोग हो जाता है, तब महान वेदना भोगता है। असमर्थ होकर कुछ भी कह-सुन नहीं सकता है। जब तक शरीर का ग्रहण है तब तक जन्म-जरा-मरण के भयानक दुःखों को सहना पडेगा। मानव जन्म के

दुःखो से पशुगति के महान दुःख है जहाँ सबलों के द्वारा निर्बल वध किये जाते है। पराधीनपने एकेन्द्रियादि जीवों को महाकष्ट सहना पडता है।

आगम के द्वारा नरक के असहनीय कष्ट तो सर्व विदित ही है। देवगति में मानसिक कष्ट महान है, इर्ष्याभाव बहुत है, देवियों की आयु बहुत अल्प होती है तब देवों को वियोग का घोर कष्ट सहना पडता है। विषयभोग करते हुए तृष्णा की दाह बढाकर रातदिन आकुलित रहते हैं, चारों ही गतियों में कर्म का उदय हैं। इन गतियों के भ्रमण से रहित होने के लिए कर्म के क्षय करने की जरुरत है। विवेकी मानव को द्रढरुप से निश्चय कर लेना चाहिए कि संसार सागर भयानक दुःखरुपी खारे पानी से भरा है, उससे पार होना ही उचित है। कर्मो का क्षय करना ही उचित है, आत्मा का भ्रमण रोकना ही उचित है। पंचमगति मोक्ष प्राप्त करना ही उचित है, अजर-अमर होना ही उचित है, इस श्रद्धान के होने पर ही मुमुक्षु जीव संसार के क्षय के लिए धर्म का साधन करता है।

क्या लेकर आया और क्या लेकर गया ?

जब किसी बच्चे का जन्म होता है तब उसका वजन लगभग ढाई किलोग्राम होता है, वही बच्चा अपनी जिन्दगी पूर्ण कर बुढापे में मरता है, तब उसके अग्निसंस्कार के बाद जलाइ गई चिता की राख का वजन भी लगभग ढाई किलोग्राम होता है। इससे यह सिद्ध होता है कि इन्सान जो लेकर आता है, वही छोडकर जाता है।

सिकन्दर ने भी मरते वक्त कहा था कि मेरे मरने के बाद मेरे जनाजे में सारा शरीर ढक देना पर मेरे दोनों हाथों को सारी दुनिया देख सके ऐसे खुले रखना। जिससे सारी दुनिया इस बात को वास्तविकरुप में समझ सके कि जगत को जीतनेवाला सिकन्दर भी खाली हाथ ही गया, अपने साथ में कुछ भी लेकर नहीं गया।

कहा भी है -

"Enters in the earth and exits from the earth with empty hands."

योगसार में कहा है -

इक्क उपज्जइ मरइ कु वि दुहु सुह मुंजइ इक्कु ।
णरयहँ जाइ वि इक्क जिउ तह णिव्वाग्गहँ इक्कु ।।६९।।

''जीव अकेला ही जन्मता है व अकेला ही मरता है, अकेला ही दुःख या सुख भोगता है, अकेला ही जीव नरक में भी जाता है तथा अकेला जीव फिर निर्वाण को प्राप्त होता है।''

जन्म के वक्त बच्चा नग्न ही होता है। उसे जीवन में पहला कपडा पहनाते है जिसका नाम है झबला। मरने के बाद उसे आखरी कपडा पहनाते है जिसका नाम है कफ़न। झबला और कफ़न में यह समानता होती है कि दोनों प्रकार के कपडे में जेब नहीं होती। तब यह प्रश्न सहज ही उपस्थित होता है कि जब जीवन के पहले कपडे में जेब नहीं होती है एवं जीवन के आखरी कपडे में भी जेब नहीं होती है, तो जीवन के बीच में कपडे की जेब भरने में अज्ञानी अपना अमूल्य मनुष्य भव व्यर्थ में क्यों गँवा देता है? वह अपना अमूल्य मनुष्य भव व्यर्थ में ही गँवा देता है इसीलिए ही अज्ञानी नाम पाता है। यदि वह अपने को अध्यात्म मार्ग में समर्पित करके तन एवं धन का मोह छोड दें तो ज्ञानी नाम पाता है।

यदि वह अस्पताल में बीमार अवस्था में हो, उसके शरीर में खून कम हो उस वक्त यदि किसी दूसरे व्यक्ति का खून उसे लेना पडे तो सबसे पहले यह जाँच करता है कि जिसका खून मैं लेने जा रहा हूँ वह खून किस ग्रुप का है। क्योंकि वह जानता है कि यदि असमान ग्रुप का खून अपने शरीर में आ गया तो मुझे जीना मुश्किल हो जाएगा।

जब किसी से पैसे लेने की बात आती है, तब वह ऐसा नहीं सोचता कि जिससे मैं पैसे ले रहा हूँ वह पैसा किस ग्रुप का है ? न्याय एवं नीति से कमाया हुआ है या अन्याय एवं अनीति से ?

रास्ते में चलते हुए यदि किसी मैले कपडे या शरीर वाले व्यक्ति का हाथ भी लग जाता है, तो अपना हाथ धो लेता है, घर जाकर नहा लेता है परन्तु हजारों लोगों के हाथ का मैल चढा-चढाकर अपने हाथ में आनेवाले रुपये की नोट को अपनी उपर की जेब में अपने हृदय के पास चिपकाकर रखता है। वहाँ यह विचार नहीं करता कि उस रुपये की नोट ने छपने के बाद में एक बार भी स्नान किया है या नहीं ?

जगत में ऐसा अधिकांश देखा जाता है कि कोई बाप दिन-रात मेहनत करके बहुत रूपये कमाता है, पर मरते वक्त उन सारे रूपये को यहीं छोडकर जाता है, यह भी सत्य है कि रूपये कमाने के लिए किये गए पापों का बोज वह अपने साथ लेकर जाता है। आज तक ऐसा कोई बाप पैदा हुआ नहीं, जो सारी जिन्दगी में कमाया हुआ धन-वैभव अपने साथ लेकर गया हो और अपने कर्मों को यहीं छोडकर गया हो।

धर्मपरीक्षा-१९ में कहा है -

अजितं सन्ति भुञ्जाना द्रविणं बहवो जनाः ।
नारकी सहमानस्य न सहायोऽस्ति वेदनाम् ।।७०।।

''कमाये हुए धन का उपभोग करनेवाले तो बहुत-से जन-कुटुम्बी आदि- होते है, किन्तु उक्त धन के कमाने में संचित हुए पाप के फलस्वरूप नरक के दुःख को भोगते समय उनमें-से कोई भी सहायक नहीं होता है- वह उसे स्वयं अकेले ही भोगना पडता है।''

जब मरण निकट आता है, तब माता-पिता अपनी संतान को जिन्दगीभर कमा-कमाकर इकट्ठी की हुई सम्पत्ति देते हैं, उसे त्याग नहीं

कहा जाता। अन्य को भोगने का उपदेश देकर बाह्य वैभव का त्याग करना, स्वार्थ ही है। भूतकाल में हो चूके त्यागी-वैरागी साधुओं ने जब भोग का त्याग किया, तब किसी अन्य को भोगने का उपदेश नहीं दिया था। उनके हृदय में सिर्फ यही भावना होती थी कि सभी जीव इस क्षणिक भोग का त्याग करके वीतराग मार्ग पर चलें और नित्य सुख की प्राप्ति करें। ऐसी उत्तम भावना के साथ भोग का त्याग करना ही वास्तविक त्याग है।

स्वयं को भूलकर सारी दुनिया की गुलामी करनेवाला यह आत्मा संस्कार के स्वार्थीपने को जानता नहीं है और अपना मनुष्यभव व्यर्थ में बरबाद कर देता है।

अतीन्द्रिय सुख की प्राप्ति होने में ही आत्मा का हित है। सम्यग्दर्शनरूपी धर्म धारण करने के फल में अतीन्द्रिय सुख की प्राप्ति होती है। धर्म सहित आत्मा इस जगत में कहीं पर भी नहीं खोता अर्थात् संसार परिभ्रमण नहीं करता। जिसतरह धागे सहित सुई वन-भवन में गिरने पर भी नहीं खोती, साथ ही धागे रहित सुई एक छोटे कमरे में भी खो जाये तो उसे खोजना अत्यंत दुष्कर हो जाता है, उसीतरह धर्म सहित आत्मा तीनों लोकों में सुरक्षित है, क्योंकि उस पवित्र आत्मा ने अपने आप को संसार के दुःखों से मुक्त कर दिया है। संसार सागर को चुल्लु में भर लिया है।

सद्गुरु की शरण एवं मरण का हरण

आज कलियुग में गुरु मिलना कठिन है, साथ ही गुरु की खोज करनेवाला मिलना भी बहुत ही कठिन है, क्योंकि गुरु की खोज करने से पहले ही शिष्य को आसानी से सहज ही गुरु मिल जाते है। परन्तु यह जरुरी नहीं है कि शिष्य को मिलनेवाले गुरु सद्गुरु ही हो, ऐसा भी हो सकता है कि वे कुगुरु भी हो।

निश्चयद्रष्टि से जिस जीव की जैसी योग्यता होती है, उस जीव

मरण का हरण

को योग्यतानुसार निमित सहज मिलते है। निश्चय से निमित की खोज नहीं करनी पडती। जगत में पत्नी खोज करने वाले युवक तो दिखाई देते है पर ऐसा कोई युवक नहीं होता जो साले को खोजने के लिए निकला हो। क्योंकि यदि पत्नी मिलती है तो साला भी मुफ्त में ही मिल जाता है, उसे खोजना नहीं पडता। बस उसी तरह **उपादान की योग्यता जागृत होने पर निमित सहज ही मिलता है, उसे खोजना नहीं पडता।**

जिसप्रकार शराब पीनेवाले को शराब पीनेवाले का योग सहज ही मिल ही जाता है, बीडी पीनेवाले को बीडी पीनेवाले का योग सहज ही मिल ही जाता है, बस उसीप्रकार धर्मी जीवो को धर्मी सद्गुरु का योग सहज ही मिल जाता है। फिर भी हमारा कर्तव्य यही है कि अपने समय को सद्गुरु की खोज करने से अधिक अपने में शिष्यपना जागृत करने में समर्पित करें।

सार यह है कि अपना अभिप्राय जोडे बिना सद्गुरु के वचनों पर द्रढ श्रद्धान करके सद्गुरु की शरण में जाने से मरण का हरण सुलभ हो जाता है।

सद्गुरु के माध्यम से जीवादि सात तत्त्वों का यथार्थ स्वरूप समझकर प्रज्ञाछैनी के माध्यम से स्व-पर का भेदविज्ञान करके निज आत्मा का निर्विकल्प अनुभव होने से मरण का हरण होता है।